यदि हम ईश्वर की सत्ता में तथा उन के द्वारा प्रचलित नियमों में विश्वास रखने का दम भरते हैं और उन नियमों का पालन नहीं करते, तो हमारा ईश्वर को मानना दम्भ है। सब से पहिला कर्तव्य है ईश्वर के बनाये नियमों का पालन करना।

(इसी पुस्तक से उद्धृत)

* ओ३म् *

# सन्त-वचन-संग्रह

( छटा पुष्प )

●

सम्पादक
श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज
वानप्रस्थाश्रम, ज्वालापुर ( हरिद्वार )
( ज़िला सहारनपुर, उत्तरप्रदेश )

●

पुस्तक-प्राप्तिस्थान

(१) वानप्रस्थाश्रम पुस्तकालय, ज्वालापुर (हरिद्वार)
(२) गुप्ता एण्ड कम्पनी, टोहाना, जि० हिसार।
(३) गुप्ता एण्ड कम्पनी, खारी बावली, दिल्ली-६

प्रथम बार १०००
पौष सं० २०२४-वि०
मूल्य ५० पैसे

ओ३म्

# प्रकाशक का निवेदन

सन्तों के वचनों में बड़ा प्रभाव होता है, उनसे मनुष्य का जीवन ही बदल जाता है। सन्त समागम दुर्लभ है, दुर्लभ ही नहीं बल्कि आजकल तो असम्भव सा हो गया है। प्रथम तो सन्त हैं ही बहुत कम, दूसरे सांसारिक कामों में अधिक व्यस्त रहने के कारण उनकी खोज करने का समय ही नहीं मिलता, इसलिये सन्तों के वचनामृत का पान करने के लिये हमें उत्तम पुस्तकों का ही सहारा लेना पड़ता है।

पूज्य श्री स्वामी विवेकानन्द जी महाराज को प्रभु की कृपा से युवा अवस्था में ही वैराग्य हो गया था। वे छत्तीस-सैंतीस वर्षों से वानप्रस्थाश्रम ज्वालापुर में रह रहे हैं। आप बहुत ही सरल और निरभिमानी हैं। बहुत से व्यक्ति उनके सत्संग से लाभ उठा रहे हैं। उन्होंने अपने स्वाध्याय के प्रसंग में अपनी रुचि के अनुकूल कतिपय सन्तों के कुछ अमृतमय वचनों का संग्रह किया हुआ है। जिसने भी उनको पढ़ा, उसे बहुत ही आनन्द और लाभ प्राप्त हुआ। एक सज्जन ने इस संग्रह को पढ़ा तो ईश्वर की प्रेरणा से सर्व जिज्ञासुओं के लिये लाभप्रद समझ कर

उनके मन में इसे छपवाने की भावना हुई। उन्होंने कुछ मास हुए (सन्त-वचन-संग्रह प्रथम पुष्प) छपवाया, जिस की साधारण जनता ने ही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े विद्वानों ने भी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इससे उत्साहित होकर दूसरा पुष्प एक माता ने तथा तृतीय, चतुर्थ और पंचम पुष्प भिन्न-भिन्न सज्जनों ने छपवाये। मुझे भी १५-२० वर्ष से प्रायः प्रतिवर्ष वानप्रस्थ आश्रम जाकर रहने का अवसर मिलता है। वहां पूज्य स्वामी जी के सत्संग का सौभाग्य भी प्राप्त होता है। मैंने पहले छपे पुष्प पढ़े, उनको पढ़-कर मेरे मन में भी इस संग्रह का छटा पुष्प छपवाने की भावना हुई। श्री स्वामी जी ने कृपा पूर्वक इसे छपवाने की स्वीकृति प्रदान कर दी है।

पूर्ण आशा है कि भगवान् की कृपा से जिज्ञासुजन इस अमृत वाणी का स्वाध्याय कर आनन्द प्राप्त करेंगे तथा अध्यात्म मार्ग में अग्रसर होंगे।

विनीता

(माता) धनदेवी साहनी

दिल्ली

ओ३म्

# सन्त-वचन-संग्रह

## ( छठा पुष्प )

१. अरे असंख्य चिन्ताओं के भार से व्याकुल ! तुझे यह भार लादने को किसने कहा है ? उठ, उस अपने सर्वरक्षक के कन्धों पर इस बोझ को अर्पित कर निश्चिन्त क्यों नहीं हो जाता । अरे मूर्ख ! जब सर्वशक्तिमयी माता हर समय जाग रही है तो कैसा फिक्र, कैसी चिन्ता, क्यों नहीं उसकी गोदी में बेफिक्री से मस्ताना होकर लेटता ।

२. भाई ! संसार में अपना पराया जानना बड़ा कठिन है, पर इसके बिना कुछ बन नहीं सकता । यदि पराये को अपना समझ लिया तो केवल पछताना होगा, इसके सिवाय और कुछ नहीं । इसलिये कहना पड़ता है कि और सब धन्धे छोड़कर पहले एक बार यह पता लगा ले कि तेरा कौन है, तेरा अपना कौन है ।

३. साधकगण ! घबराओ नहीं, सन्तोष रक्खो, परीक्षा में उत्तीर्ण होओ । जो त्याज्य है उसे त्यागे ही रक्खो, तो सब कुछ ही मिल जायगा । मिलने का नियम

तो अटल है, केवल कठिन परीक्षा में दृढ़ निकलने की देर है।

४. जब कि मैं सदैव ही अपने को उस परमानन्द के स्रोत से जोड़े रक्खूंगा तो कौन सा अवसर हो सकेगा, जब कि शोक और चिन्ता की कड़ी धूप मुझ तक पहुँच मुझे संतप्त करेगी।

५. ऐ उच्च मार्ग के पथिको! सावधान! इस प्रतिष्ठा पिशाचिनी से सावधान! यह पिशाची अपना पाश फैला कर जगह-जगह पर हमारे मार्ग में आकर बैठती है, उससे बच बचकर आगे पग धरना, अन्यथा यह अपने जाल में फंसाकर सहज में अधोगति के गड्ढे में गिरा देगी।

६. जब अधिक मान सम्मान होने लगे, लोग बहुत वाह-वाह के गीत गाने लगें, तो जान लेना कि प्रतिष्ठा की रपटन आगई है, इस चिकने स्थल पर संभल कर पैर रखना ताकि कहीं फिसल कर औंधे मुँह गिरना न पड़े।

७. विचारने और संभलने का तो वही समय है जब कि प्रलोभन थोड़ा सा, थोड़ा सा कहता हुआ हमें गढ़े में गिराने के लिये पास आता है। उस समय कम से कम यह सोच लेना चाहिये कि जब मैं इस थोड़े से को नहीं रोक सकता, तो क्या बढ़ जाने पर रोकूंगा। इसलिये जब भी यह थोड़ा सा आवे, (पाप की भावना, भोग की वासना, क्रोध लोभादि के भाव) तो कड़क कर

गम्भीर स्वर से कह देना कि नहीं, बिल्कुल नहीं। क्या मैं इतना तुच्छ हूँ कि इस 'थोड़ा सा' की बहकावट में आ जाऊँ, यह कदापि मेरे योग्य नहीं है। मेरे अन्दर महान् शक्ति है मैं इस 'थोड़े से' से कभी नहीं हिलूंगा।

८. हे मनुष्य ! यहां संसार में क्यों फंसा पड़ा है ? तू तो दिव्य मोक्ष का अधिकारी, अनासक्ति के पवित्र मार्ग द्वारा ब्रह्मानन्द को पाने का अधिकारी है। तू क्या इस दशा में पड़ने के लायक है ? उठ, तू मनुष्य है तू हारा थका क्यों पड़ा है ? तुझ में तो अनन्त शक्ति प्रवाहित हो रही है, तेरे मस्तिष्क में ज्ञान का सूर्य चमक रहा है, तेरे हृदय में स्वयम् भगवान् वास कर रहे हैं, तू क्या नहीं कर सकता, उठ।

९. माता तो प्रेम पूर्ण आंखों से अपने पुत्रों को हर समय ढूँढ़ रही है किन्तु हम ही निर्बलताओं के मारे अपने आपको इन खोलों ( पांच कोशों ) और चोलों, अर्थात् तीन शरीरों में छिपाये फिरते हैं। जब हम निज माता के सदृश्य अपने उज्ज्वल तेजस्वी मुख को इन खोलों से बाहर निकालेंगे, तो तत्क्षण अपने को माता के अङ्क में पहुंचा पायेंगे, क्योंकि तब माता अपने लाल को तुरन्त गोदी में उठा मुख चूम परम सन्तोष, परम आनन्द देगी जिसे कहीं भी न पाकर हम भटक रहे थे।

१०. भाइयो ! जीवन-पथ के यात्री को चैन कहां है ? बिना अपने घर पहुँचे हम भटके हुए बालकों को शांति कैसे मिले ? आओ, दिन रात उठते बैठते, चलते फिरते, सोते जागते हर समय कमर कसे रहें, हर समय जागते रहें, आगे बढ़ने को सदा सावधान रहें। यहां विश्राम और शांति ढूंढना व्यर्थ है। पथिक ! मार्ग में सुख चैन कहां ? आ जाओ, बहुत देर हो चुकी, अब खेलना छोड़ दें और अपने घर की तलाश में अनवरत, अथक परिश्रम करते हुए आगे ही चलते चलें, जब तक कि हम अपने घर की पवित्र ज्योतिर्मयी दिव्य भूमि पर न पहुँच जायें जहां अनन्त तेज, अगाध शांति, अपार सौंदर्य और असीम आनन्द हमारा स्वागत करने के लिये हमारी प्रतीक्षा कर रहा है।

११. मनुष्य अमृत को अपने पास रखते हुए भी संसार के दुःख सागर में डुबकियां खाता रहता है। यह कितनी दुःख की बात है।

१२. परदोष दर्शन कल्याण मार्ग में मुख्यरूप से बाधक है। परदोष दर्शन में अपनी शक्ति का अपव्यय नहीं करना चाहिये। हां, अपने दोषों वा बुराइयों को बाहर निकालना ही मानव जीवन की सफलता का सार है। ध्यान से देखने पर पता चलेगा कि बुरे दूसरे नहीं, बुरे हम हैं। दूसरों के दोष देखना भी तो एक बुराई है।

सच बात तो यह है कि हमने जिस प्रकार का व जिस रंग का चश्मा आँखों पर लगा रक्खा है बस उसी प्रकार से सारा संसार दृष्टिगोचर होगा। पर-दोष देखने की अपेक्षा स्वयं के मलिन संस्कारों को धोने की कोशिश करना उन्नति पथ पर आगे बढ़ने का उपाय है। हम जोंक की भांति न बनें, जो स्तनों पर लगा देने पर भी दूध को त्याग कर खून का सेवन करती है। हमारा जीवन जितना पवित्र, सात्विक और स्वार्थ रहित होगा, हमें लक्ष्य प्राप्ति में उतनी ही शीघ्र सफलता मिलेगी। हमारा जीवन फूलों की सुगन्ध के समान होना चाहिये। जिस प्रकार फूलों के समीप जाने के लिये प्राणीमात्र की इच्छा होती है और उसकी सुगन्ध में प्रसन्नता की अनुभूति करता है। उसके विपरीत दुर्गन्ध के समीप कोई भी व्यक्ति जाना नहीं चाहता। इसलिये उस सुगन्धमय जीवन को बनाने के लिये यत्न करना मनुष्य का कर्त्तव्य है।

१३. अपने को ईश्वर के हाथों सौंप देने से सब दुःखों से छुटकारा हो सकता है। भोले भाले बच्चे जब अपने आपको माता की गोद में डाल देते हैं तब आंधी वर्षा उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

१४. बिना वैराग्य के ईश्वर प्राप्ति इस प्रकार से कठिन है जिस प्रकार पत्थरों का बोझा उठाकर सीधा पर्वत पर चढ़ने का प्रयत्न करना।

१५. रोगी चित्त की चार निशानियाँ हैं:—उपासना में मन न लगना, प्रभु का भय न करना, सत्संग, सत्-उपदेश सुनकर उस पर आचरण न करना, संसार में लिप्त रहना।

१६. परमात्मा को अपने आत्मा में अनुभव करना और उसी को कर्त्ता धर्ता अनुभव करते हुए रात दिन उसी की शरण में, उसी की भक्ति में अपने आपको लीन रखना ही आत्मा का जीवन है और परमात्मा से दूर हो जाना अर्थात् उसकी भक्ति से शून्य हो जाना, उसके प्रेम से खाली हो जाना, आत्मा की मृत्यु ही है। इस आत्मिक मृत्यु से मनुष्य उसी अवस्था में बच सकता है जब अनन्य मन से उसका भजन ध्यान करे।

१७. भय कभी और कहीं नहीं करना चाहिये। जब शरीर नाशवान है और आत्मा अमर है तो फिर भय किसका और किसलिये ? सच्चा वीर वही है जो ईश्वर के अतिरिक्त किसी से भी न डरे।

१८. अपनी गलती मान लेना झाड़ू लगाने का सा काम है। यह गंदगी को बुहार कर सतह को साफ कर देता है।

१९. शान्ति बाहर की किसी वस्तु में नहीं मिलती, वह अपने अन्दर की वस्तु है। चिन्ता एक डायन है जो शरीर को खा जाती है।

२०. जैसे पर्वतों के शिखर पर से निकली हुई नदी समस्त पहाड़ों और घाटियों को चीरती हुई मैदानों और वनों को पार करती हुई उस समय तक आराम नहीं लेती जब तक कि वह सागर में नहीं मिल जाती। ठीक ऐसे ही ईश्वर भक्ति परायण सच्चे भक्तों का हाल है। वह इस मनुष्य जन्म को सार्थक करने के लिये, उस प्रभु को पाने के लिये उस समय तक बराबर यत्न करते रहते हैं जब तक वह उसको प्राप्त नहीं कर लेते। उनके मार्ग में रुकावटें आती हैं, विघ्न पड़ते हैं, संसार की वस्तुओं में फँसी हुई इन्द्रियों तथा मन को रोकना पड़ता है, लोहे के चने चबाने होते हैं परन्तु वह ये सब कुछ किये जाते हैं और अन्त को उस प्रभु का साक्षात्कार करते हैं।

२१. प्रेम प्याला जो पिये, सीस दक्षिणा दे।
लोभी सीस न दे सके, नाम प्रेम का ले॥

काम क्रोध लोभ मोह में फँसा हुआ क्या सीस दे सकता है? वह ईश्वर प्रेम का आनन्द क्या ले सकता है जो सांसारिक सुखों, सांसारिक भोगों के सुख में ही डूब रहा है वह ईश्वर प्रेम के मार्ग पर कैसे चल सकता है। इसीलिये उपनिषद् में लिखा है कि ईश्वर प्राप्ति का मार्ग छुरे की धार है और यह अति संकुचित है, अति कठिन है, इस पर चलना किसी बिरले का ही काम है। परन्तु इसके साथ ही यह भी सत्य है कि एक बार आत्मा में ईश्वर

प्रेम की लहर उठे, आत्मा में ईश्वर भक्ति का स्रोत जारी हो जाय, फिर इससे अधिक आनन्द देने वाली कोई दूसरी वस्तु नहीं रहती। मनुष्य को एक बार ईश्वर प्रेम का चसका पड़ जाय फिर वह बार-बार उसी की ओर जायगा, और अन्त को वह ईश्वर का साक्षात्कार कर कृतकृत्य हो जायगा।

२२. भगवान् पर अनन्य तथा सुदृढ़ विश्वास होते ही सारी चिन्तायें, सारी दुःखद परिस्थितियां और सारी बाधायें दूर हो जाती हैं क्योंकि हमारे लिये जो कुछ भी फल निर्माण होता है सब भगवान की आज्ञा से होता है और भगवान् हैं हमारे सुहृद, अकारण हित करने वाले परम मित्र। अतएव जो कुछ भी हमारे लिये विधान है अथवा होगा, वह कल्याण रूप होगा। भगवान् के द्वारा निर्मित प्रत्येक विधान हमारे लिये निश्चित कल्याणरूप है, यह निश्चय होते ही सारी चिन्ताएँ अपने आप नष्ट हो जाती हैं।

२३. कामना वाला मनुष्य निरन्तर अभाव की आग में जलता है और कामना पूर्ति में लोभ तथा कामना की अपूर्ति में क्रोध, क्षोभ के वश में होकर दुःखी तथा विवेक शून्य हुआ रहता है। क्रोध तो मनुष्य को राक्षस बना देता है। वह इतना भयानक हो जाता है कि अपने पर तथा दूसरों पर घातक प्रहार कर बैठता है। ऐसी हानि पहुँचा

देता है कि जिसके लिये उसे स्वयं भारी पश्चाताप करना पड़ता है। लोभ तो पाप का बाप ही है, लोभी मनुष्य ऐसा कौन सा जघन्य पाप है जो नहीं करता। इन सब का मूल है अविद्याजनित अहंकार। अतएव इन सब से बचकर जो ईश्वर पर अटल विश्वास रखता है वही सुखी रहता है और उसी का भविष्य भी सुख पूर्ण होता है।

२४. घर में अथवा संसार में हम किसी दिन ऐसे आचरण नहीं करते जिससे यह प्रतीत हो कि इस घर के देवता और मालिक हैं वे प्रभु, और इस संसार रथ को चला रहे हैं वे महारथी। मैं ही घर का मालिक हूँ और मैं संसार का संसारी। प्रातःकाल आंख खुलते ही यह चिंता शुरु होती है और रात्रि को कुछ काल के लिये निद्रा आकर उसे आवर्त करती है। 'मैं' से ही संसार ठसाठस भरा है। कितनी दलील, कितना वाद-विवाद, किन्तु ईश्वर कहीं है केवल बातों में, और कहीं भी उनके लिये तिल रखने भर का स्थान नहीं है। केवल बातों में ईश्वर को स्वीकार करने के समान भी अपने को धोखा देने की वस्तु कोई और है? मैं इस सम्प्रदाय का हूँ, मेरा यह मत है। ईश्वर के लिये थोड़ी सी धोखा देने भर की जगह छोड़, शेष सब स्थान पर विना संकोच अधिकार जमा कर बैठने की जो स्पर्धा है वह स्पर्धा ही अपने-को पहचानने का अवसर भी नहीं देती।

२५. आज हमारी कसौटी बाहर की है लोग क्या कहेंगे, लोग क्या करेंगे। उसी के अनुसार हम अपने भले और बुरे का निर्णय किये बैठे हैं इसीलिये लोगों की सम्मति हमारे मर्म को स्पर्श करती है अर्थात् हमें दुःख देती है। लोक भय इतना चरम भय है, लोक-लज्जा इतनी अधिक है इसीलिये लोग जब हमारा त्याग करते हैं तब हमें लगता है कि जगत् में अब हमारा कोई नहीं रहा, तब हमें शास्त्र के इस कथन पर भरोसा नहीं रहता कि अन्तर्यामी के सामने जिस व्यक्ति ने अपराध नहीं किया, बाहर के लोग उसे जेल में बन्द करके अथवा फाँसी देकर भी किसी प्रकार दुःख नहीं दे सकते। जो संसार को ही सब कुछ मान लेते हैं संसार उनके लिये संकटमय हो जाता है तभी वह उसे आश्रयहीन और अनाथ पाकर उसका सर्वनाश करके छोड़ता है।

२६. जो वस्तु बाहर की है वह बाहर ही रखनी पड़ेगी, उसे अन्तर में ले जाने से वह वहां का जंजाल बन जाती है। जहां जिसका स्थान न हो वहां वह केवल अनावश्यक ही नहीं अनिष्टकर भी हो जाती है। अतएव हमारे जीवन की प्रधान साधना यही है कि बाहर की वस्तु बाहर ही रहे, भीतर जाकर वह विकार की सृष्टि न कर पाये। संसार में हमको जो पद-पद पर क्षति मिलती रहती है, जो आज है वह कल नहीं रहेगा उस क्षति को

हम वाह्य संसार की ही करके क्यों नहीं रखते, उसे हम भीतर लेजाकर क्यों रखते हैं? वृक्ष का पत्ता आज नवीन कोंपल रूप में फूटता है कुछ दिन वाद जीर्ण होकर गिर पड़ता है। किन्तु गिरता है वह वाहर ही। वृक्ष अपनी वाहर वाली क्षति का अपने अन्तर में पोपण नहीं करता। वाहर की क्षति वाहर रहती है और अन्तर की पुष्टि अव्याहत भाव से चलती रहती है किन्तु हम इस भेद को समझ कर इस पर अमल नहीं करते।

२७. हम लोग वाहर के समस्त जमा खर्च को भीतर के खाते में ऐसी पक्की तरह लिख कर सुनहरी कलेवर में बंधी वहुमूल्य वही अर्थात् अन्तःकरण को नष्ट करते हैं। अपने वाह्य विकार को भीतरी पाप की कल्पना के रूप में चिन्तन करते रहते हैं, वाहर के आघात को भीतरीअन्तः-करण में जमा करके रखते हैं।

२८. हमारे भीतर महल में एक स्थायित्व धर्म रहता है। वहां जमा करने के लिये स्थान है, इसलिये यहां जव तक वह उपयुक्त वस्तु न हो, जो कुछ भी मिले, उसे उठा-कर रख देना ठीक नहीं। असावधानी से फिर यहां विकार स्थायी भाव से उत्पन्न हो जाता है। मृत देह को कोई अन्तःपुर के भण्डार में उठाकर नहीं रखता, उसे तो वाहर ही मिट्टी अथवा जल अग्नि के समर्पण कर देना है, इसीलिये कहा है कि जो वाहर की वस्तु है उसे

बाहर रखने की साधना ही जीवन यात्रा की साधना है। अपने अन्तर को बाह्य आक्रमण से बचाओ।

२६. घोरतर संहार के बीच कोलाहल होते हुए भी अनुभव करना होगा कि उस अन्तराल में कोई कोलाहल पहुँचता ही नहीं, वह तो सदा शांत शुद्ध तथा निर्मल है वहां किसी प्रकार भी बाहरी चांचल्य का प्रवेश नहीं हो सकता। एक बार अन्तर के अन्तर की सैर कर आओ, देख आओ कि वह निवात, निष्कम्प प्रदीप प्रज्वलित है। अनुत्तङ्ग समुद्र अपनी अतल स्पर्श गम्भीरता लिये हुए स्थित है, शोक का क्रन्दन वहां पहुँचता ही नहीं।

३०. संसार हमारे बीच नहीं, किन्तु परमात्मा हमारे अन्तर है इसीलिये संसार को अनेक चेष्टा करके भी हम नहीं पा सकते, पर परमात्मा को तो प्राप्त किये हुए हम बैठे हैं।

३१. मनुष्य का ईश्वर के साथ अत्यन्त विचित्र ढंग की योग, रक्षा का मतलब दिखाई देता है। जो जहां है उसे ठीक वहीं रखते हुए और उसके साथ वैसे ही ईश्वर को भी रखने की चेष्टा रहती है उसमें कुछ भी उलट पुलट करना नहीं चाहता। ईश्वर से कहता है आप घर में आइये। किन्तु सब चीज बचाते हुए कहीं मेरा कांच का फूलदान न गिर जाय, घर में जगह-जगह जो अनेक खिलौने सजाकर रख छोड़े हैं वे टक्कर खाकर टूट

न जाएँ, इस आसन पर मत बैठियेगा इस पर तो अमुक व्यक्ति बैठेगा, इस जगह नहीं, क्योंकि यहां तो मैं अमुक कार्य करता हूँ, इस घर में नहीं इसको तो मैंने अमुक के वास्ते सजाकर रखा हुआ है, ऐसा करते-करते सब से कम जगह एवं सब से अनावश्यक, सबसे रद्दी स्थान हम उन के लिये छोड़ते हैं। फिर आशा रखते हैं कि वह आवें।

३२. इस पर एक कहावत है कि एक मनुष्य तीर्थ यात्रा को गया। तब उसे बड़ी चिन्ता यह हुई कि जगन्नाथ जी पर चढ़ावा क्या चढ़ाया जावे। क्योंकि जो भेंट कर देगा, उसे वह फिर अपने काम में नहीं ला सकता। इसीलिये जिस वस्तु को भी भेंट के लिये सोचता, वही जचती नहीं थी, उसका जिसमें अल्पमात्र भी लोभ था उसे पुरानी आदत के अनुसार देने के नाम से उसका मन व्याकुल होने लगता। अन्त को बहुत सोच समझ कर वह जगन्नाथ जी को एक सड़ा हुआ बैंगन चढ़ा आया, इसी चीज पर उसका सबसे कम लोभ था।

हम भी ईश्वर के लिये उतना ही, वही छोड़ते हैं जिसमें हमें सबसे कम लोभ हो। जो हमारे लिये नितान्त बचा बेकार हो। ईश्वर के नाम की एक दो माला फेर ली, थोड़ा सत्संग कर लिया बस मन पवित्र होगया, मैंने ईश्वर की उपासना कर ली।

बस इसी को हम उपासना कहते हैं। जब विद्या की,

धन की, मनुष्य की उपासना करते हैं वह इतनी सरल नहीं होती, उस समय उपासना किसे कहते हैं यह समझने में कसर नहीं रहती। केवल ईश्वर की उपासना ही उपासनाओं में सबसे अधिक खिलवाड़ की वस्तु है।

३३. समस्त चतुराई छोड़कर ईश्वर को सम्पूर्ण आत्म-समर्पण करना होगा यही बात पक्की करनी है। यह अच्छी तरह जान लेना होगा कि जो जीवन हमारा था उसके सम्बन्ध में हमारी मृत्यु होगई है। मैं अब वह नहीं हूँ जो था और जो मेरा था वह भी कुछ नहीं।

३४. मैं धन के लिये, ख्याति के लिये, आराम के लिये मृत हूँ, केवल जीवित हूँ भगवान् के लिये। नितान्त सद्योजात शिशु के समान निरुपाय, असहाय होकर उनकी कोख में जन्म लिया है, उन्हें छोड़कर कोई गति नहीं। इसलिये उनकी सन्तान होकर जीना सम्पूर्ण भाव से शुरू करदो, किसी भी वस्तु पर ममता मत रक्खो।

३५. हम जिन्हें साधना द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं आरम्भ से ही उन्हें अपना हाथ समर्पण कर देना चाहिये, वे स्वयम् ही फिर हाथ पकड़ कर अपनी तरफ लिये जायेंगे, फिर चलने में भी आनन्द और पहुँचने में भी आनन्द मिलेगा।

३६. प्रभु प्राप्ति करनी होगी, कहना ठीक नहीं। हमें अपने को समर्पण करना होगा, यह कहना चाहिये।

अभाव हमारे अन्दर है इसीलिये मिलन नहीं होता। उन्होंने तो अपने को दे डाला है हमने अपने को नहीं दिया। हमने नाना प्रकार के स्वार्थ के, अहंकार के, क्षुद्रता के घेरे बनाकर अपने को बन्दी कैदी बना लिया है।

३७. असल बात यह है कि जिन्होंने (प्रभु ने) पूर्ण रूप से अपने को हमें दान कर दिया है हमें भी उनके लिये पूर्ण रूप से दान किये बिना उन्हें प्राप्त करना कठिन है, कमी हमारी तरफ से है।

३८. हमारा जितना दुःख, जितनी वेदना है वह इसीलिये है कि अपने अहम् को हम मिटा नहीं पा रहे हैं। उसे मिटाते ही तत्क्षण दिखाई पड़ेगा कि हम अपनी सकल प्राप्ति को तो चिरकाल से प्राप्त किये बैठे हैं।

३९. जैसे विष खाने वाले का अमर होना असंभव है, वैसे ही संसार में आसक्त पुरुष का कल्याण असम्भव है।

४०. जब तक मनुष्य परमात्मा का साक्षात्कार नहीं कर लेता, तब तक यह तीनों तापों से दबा रहकर मकर आदि के समान राग आदि दोषों से इधर-उधर खींचा जाता हुआ मोह ग्रस्त हो जन्म मरण रूप संसार में पड़ा रहता है।

४१. जिस प्रकार व्याध मृगों की घात में रहता है

उसी प्रकार यह काम क्रोधादि दोष प्रत्येक मनुष्य को उसका कोई छिद्र देखने की इच्छा से घेरे रहते हैं।

४२. सुख से सुख प्राप्त नहीं किया जा सकता। भाव यह है कि जो स्वधर्म अनुष्ठान के क्लेश सहता है उसी का पुरुषार्थ सिद्ध होता है।

४३. चित्त का प्रपञ्च की ओर घूमते रहना ही अज्ञान है और आत्मा की ओर घूम जाना ही ज्ञान है।

४४. इच्छा की पूर्ति का सुख वस इतना है कि सारा शरीर तो झुलस गया हो और पैरों में चन्दन का लेप किया जा रहा हो।

४५. उपदेश सुनते समय अनास्था, अश्रद्धा होने पर सुनना न सुनना बराबर है, चित्र में खींचे गये वृक्ष की तरह वह फल रहित होता है।

४६. आप जीवन में अवश्य सफल हो सकते हैं, प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में, अपने ध्येय में अवश्य सफल हो सकता है। परिस्थितियों और कठिनाइयों को दोष देते रहना निर्वलता का दूसरा नाम है।

४७. कोई भी वस्तु अपने सौंदर्य और सम्पूर्णता को तब तक नहीं प्राप्त करती जब तक उसकी शक्ति परीक्षा द्वारा प्रतिष्ठित न हो जाय। वे शलाकाएँ जो कि दुनियां में सबसे अधिक शक्तिशाली और श्रेष्ठ काम में उपयोग में लाई जाती हैं सदैव ही लुहार द्वारा अधिक

से अधिक तपाई जाती हैं ताकि उनकी धातु और उनकी शक्ति की परीक्षा हो जाय, और वे दूकान पर बेची जाने के लिये भेजी जा सकें। ईंट पकाने वाले उन ईंटों को उठाकर एक तरफ़ फैंक देते हैं जो सख्त गर्मी के मुकाबले में ठहर नहीं पाती। इसीलिये यदि किसी आदमी को महात्मा बनना, जीवन उद्देश्य को पूरा करना है, स्थायी शान्ति प्राप्त करनी है तो उसे विरोधी परिस्थितियों से जूझना होगा। परीक्षा अग्नि में तपकर उनका बल दुर्बल न होकर और भी शक्तिशाली एवम् सुन्दर रूप में उसे प्राप्त होता है।

४८. जो बहुत शोर मचाते हैं उनसे कुछ नहीं होता। काम करने वाली भाप का स्वर कोई नहीं सुनता, केवल व्यर्थ जाने वाली भाप ही शोर मचाती है।

४९. उपहास अथवा निन्दा किये जाने पर जिस व्यक्ति को चोट पहुँचती है वह पूर्ण आदमी नहीं है। जिस व्यक्ति में आत्म-विश्वास है उपहास और निंदा उसके शक्तिशाली कवच को नहीं बेध सकते, यह चीजें उसके सत्यनिष्ठ हृदय के अजय दुर्ग तक नहीं पहुँच सकतीं, न उस पर चोट पहुँचा सकती हैं, न क्षति।

५०. जो व्यक्ति अपने सिद्धान्तों का, अपने साधन का परित्याग नहीं करता सिद्धान्त और साधन भी उसे कभी असहाय नहीं छोड़ते। वे समस्त शस्त्रों से उसकी

रक्षा करते हैं, समस्त संकटों में से उसे सलामती के साथ पार करते हैं और अंधकार तथा बाधाओं से भरे मार्ग में एक प्रकाश का काम करते हैं, वे अंधकार में प्रकाश, दुःख में विश्राम और संघर्षों में विजय प्राप्त कराते हैं।

५१. हमारा मन सदा प्राकृतिक वस्तुओं में फंसा रहता है। माता, पिता, भाई-बन्धु, स्वजन, परिजन, स्त्री, पुत्र, धन धाम यही सब हमारे अन्तःकरण में बैठे रहते हैं। मन एक क्षण को भी विराम नही लेता। उसकी मशीन सदा चालू रहती है। घड़ी तो कभी-कभी बिगड़ भी जाती है, चाबी न दें तो बन्द भी हो जाती है, किन्तु यह मन की मशीन तो गाढ़ नींद की हालत को छोड़कर निरन्तर चालू रहती है। ग्रामोफोन के रिकार्ड में जैसे गीत भरे होंगे, मशीन चलने पर उसमें से वे ही गीत निकलेंगे। रिकार्ड तो हों गंदी गजलों के, किंतु हम चाहें कि भक्ति भरे संगीत बजें तो यह असंभव है। इसी प्रकार हमने अन्तःकरण में तो भरे हों संसारी मोह-ममता के संस्कार और हम चाहें कि हम चिन्तन करें परमात्मा का, और भाव हमारे भक्तिमय हों, यह असम्भव है।

५२. जैसे सुई चुम्बक से, लता वृक्ष से, और नदी सागर से जा मिलती है उसी प्रकार जब चित्त वृत्तियां भगवान् को प्राप्त कर उनमें सदा के लिए स्थिर हो जाती हैं तब इसे भक्ति कहते हैं।

५३. यदि हम ईश्वर की सत्ता में तथा उनके द्वारा प्रचारित नियमों में विश्वास रखने का दम भरते हैं और उन नियमों का पालन नहीं करते तो हमारा भगवान् को मानना केवल दम्भ है, इसलिये भक्त बनने के लिये सबसे पहला कर्त्तव्य है ईश्वर के बनाये नियमों का पालन करना।

५४. व्यवहार की जरूरत है भोजन वस्त्र के लिये, भोजन वस्त्र का प्रयोजन है जीवन धारण के लिये, इतना तो स्पष्ट है परन्तु जीवन धारण किस लिये है, यह स्पष्ट नहीं है। हम कलाई में घड़ी बांधते हैं मिनट-मिनट का हिसाब रखने के लिये। परन्तु सारा जीवन व्यर्थ बीत गया इसका कोई हिसाब नहीं, कितने आश्चर्य और शोक की बात है।

५५. वास्तव में हम सब भगवान् के हैं, भगवान् ने हमारा त्याग नहीं किया है, हम लोग ही उनसे विमुख होकर संसार में दुःख उठा रहे हैं; अतः जब भी चाहें तब ही अपने नित्य साथी प्रभु से सम्बन्ध स्थापित करके हम उनके प्रिय भक्त बन सकते हैं। अतः साधक को चाहिये कि प्रभु का आश्रय लेकर अपने-आपको उन्हें सौंप कर एवम् सब प्रकार से उनका होकर उनका प्यारा भक्त बनने की लालसा करे।

५६. पहले अपना सुधार करो, और तब दूसरों का।

५७. दुःख और सुख कहीं बाहर से नहीं आते, वे तो हमारे हृदय और मन में ही रहते हैं।

५८. सुख अपने भीतर है वह बाहरी ऐश्वर्य अथवा संसार की अन्य वस्तुओं में नहीं है।

५९. जहरीले साँप की तरह चुगली से दूर रहो, जो दूसरों की चुगली करता है उसे कभी शांति नहीं मिलती।

६०. कष्टों के बीच जो हमेशा प्रसन्न रहता है वह वास्तव में महात्मा है।

६१. यदि हमारे हृदय में शांति है तो बाहर उठने वाला तूफ़ान हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

६२. निराशा, चिन्ता और चिड़चिड़ेपन से हम अपने कष्टों को दूर नहीं कर सकते, उनसे हमारे कष्ट अधिक बढ़ जाते हैं। यदि जीवन को सुखी और उपयोगी बनाना है तो हमें मन को सुदृढ़ और गम्भीर बनाना होगा।

६३. तुम्हें कोई दूसरा दुःख नहीं दे सकता, तुम स्वयम् अपने को दुःखी करते हो। यदि तुम बुरा काम करो और उसका फल दूसरा भोगे तो फिर ईश्वरीय नियम ही कैसा? याद रखो दुनिया के सारे काम ईश्वरीय नियम से चलते हैं। यदि उसके अनुसार काम न हो तो यह जगत् एक मिनट भी कायम नहीं रह सकता, चारों ओर हाहाकार मच जावे। देखने में तो यही प्रतीत होता है कि

दूसरों के कारण हमें दुःख मिलता है किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है, गम्भीरता पूर्वक विचार करने से इसकी सच्चाई मालूम हो जाती है।

६४. चिन्ता, निराशा, भय और दुःख भक्त के पास नहीं आ सकते, वह चाहे जिस परिस्थिति में रहे, उसकी शांति भंग नहीं होती। वह प्रत्येक वस्तु को अपनी बुद्धि से तोड़-मरोड़ कर अपने अनुकूल बना लेता है। उसको किसी वस्तु से शोक नहीं होता।

६५. तुम्हारी भलाई इसी में है कि तुम अपनी कमियों को समझो और समझ कर उन्हें दूर करो।

६६. भविष्य को अन्धकारमय मत देखो, सदा प्रकाशमय देखो। अपने कर्त्तव्य का पालन प्रतिदिन हंस हंस कर निस्स्वार्थ भाव से करते रहो। ऐसा करने से तुम प्रतिदिन आनन्द और शान्ति का अनुभव करोगे, और तुम्हारा भविष्य भी बड़ा सुखदाई होगा।

६७, दूसरों की प्रसन्नता का ध्यान रखो, सबके साथ नेकी करो, सबसे प्रिय मीठी बातें करो।

६८. यह बात ठीक है कि बुरे लोग नदी के किनारे के वृक्ष की तरह हरे-भरे रहते हैं किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि किनारे का वृक्ष जल्दी ही गिर पड़ता है, बुरे लोगों की भी यही दशा होती है।

६९. समुद्र में ऐसे गहरे स्थान हैं, जहां भयानक से

भयानक तूफान नहीं पहुँच सकते। उसी प्रकार मनुष्य के हृदय में भी शान्त और पवित्र गहरे स्थान हैं जहां दुःख के तूफान स्पर्श तक नहीं कर सकते। हृदय के गहरे स्थान में पहुँच कर उसी में रहने का अभ्यास करना चाहिये।

७०. बाहर संसार में बड़े झगड़े बखेड़े हैं किन्तु मनुष्य के हृदय में स्थाई शान्ति है। संसार से निर्लिप्त हो जाओ, इन्द्रिय भोगों को छोड़ो, दिमागी बहस मत करो, संसार के झगड़े बखेड़ों से बचो और फिर अन्तर्मुख होकर हृदय के भीतर देखो तो तुम्हारे सब दुःख नष्ट हो जावेंगे और तुम्हें स्थाई शान्ति मिलेगी। ईश्वर की कृपा से तुम्हारे दिव्य चक्षु खुल जावेंगे, जिनके द्वारा तुम प्रत्येक वस्तु को उसके असली रूप में देखोगे।

७१. मनुष्य शांति-शांति चिल्लाते हैं किन्तु शांति कहीं दिखाई नहीं पड़ती। शांति के स्थान में अशांति, शत्रुता और कलह दिखाई पड़ते हैं। बिना स्वार्थ का त्याग किये, बिना अन्तर्मुख हुए शांति मिल ही नहीं सकती।

७२. मनुष्यो! यदि तुम स्थायी सुख प्राप्त करना चाहते हो, यदि तुम्हें टिकाऊ शांति प्राप्त करने की इच्छा है, यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे सारे कष्ट और तुम्हारी सारी चिन्ताएं नष्ट हो जायं और तुम्हें मोक्ष

मिले, तो तुम अपनी इन्द्रियों को वश में करो, और अन्तर रहने का अभ्यास बढ़ाओ। शांति प्राप्त करने का इससे बढ़कर दूसरा मार्ग नहीं है।

७३. आओ जिनके बराबर तुम खड़े हो उनसे आगे बढ़ो और जो तुमसे बढ़े हुए हैं उन तक पहुँचने का यत्न करो।

७४. गीता में कहा है अपना उद्धार तुम स्वयम् करो, अपने आपको हीन मत समझो। मनुष्य स्वयं ही अपना मित्र अथवा शत्रु है। अपने को हीन समझना निकृष्टतम हिंसा है।

७५. सच मानिये आप अनन्त शक्तियों और सफलताओं के भण्डार हैं, संसार की उच्चतम योग्यताएं आपके हिस्से में आई हैं, समस्त अद्भुत शक्तियां आपके शरीर मन और आत्मा में विद्यमान हैं, आप केवल आलस्य वश उन्हें जाग्रत और विकसित करने का कष्ट नहीं करते, यदि आप अपने पुरुषार्थ, उद्योग और सतत अभ्यास से अपने गुप्त सामर्थ्यों को जाग्रत कर लें तो निश्चय ही आप अपने क्षेत्र में सफल हो सकते हैं। यदि यह प्रयत्न चलता रहे तो मनुष्य जिस वस्तु की आकांक्षा करता है वह अवश्य प्राप्त कर सकता है, अतएव आप यह निश्चय कर लीजिये कि आप चाहे जो कुछ हों, जिस स्थिति या जिस वातावरण में हों आप एक

कार्य अवश्य करेंगे, वह यही कि जिस उद्देश्यपूर्ति के लिये हमें यह मनुष्य शरीर मिला है उसे अवश्य पूरा करेंगे।

७६. किसी शास्त्र का वाक्य है कि हे मानव! पुरुषार्थ का आश्रय ले, शोक को अवसर मत दे।

७७. आपके हृदय सरोवर में जिन शुभ या अशुभ विचारों का प्रवाह चलता रहता है वही अप्रत्यक्ष रूप से आपके व्यक्तित्व का निर्माण करता है। यदि आपके विचार या अपने सम्बन्ध में बनाई हुई गुप्त धारणायें ही निर्बल होंगी, तो निश्चय ही आप निर्बल बनेंगे। आपका आत्मबल, आपका साहस और आपका पौरुष भी कमजोर ही रहेगा।

७८. दुर्बलता शरीर की नहीं होती, उसका केन्द्र मन में रहने वाले विचार हैं।

७९. तनिक उस मूर्ख के मन की स्थिति का अनुमान कीजिये जो स्वयं अपने विषय में और भाग्य के विषय में तुच्छ विचार रखता है। अपने अन्दर निवास करने वाले सत् चित् आनन्द स्वरूप प्रभु की बेकदरी करता है, स्वयं अपने विषय में हीनत्व की भावना रखने से वह मानो ईश्वर की निन्दा करता है (क्योंकि यह ईश्वर का प्रिय पुत्र है) ऐसा अदूरदर्शी मनुष्य स्वयं मानो अपने ही हाथों से अपना भाग्य फोड़ता है, संसार की

चिन्ताओं, कठिनाइयों एवं कल्पित भयों को आमन्त्रित करता है।

८०. यह संसार हंसते हुए के साथ हंसता है, रोते को छोड़ देता है, बढ़ते और दौड़ते का साथी है।

८१. एक बार किसी राजा से एक व्यक्ति ने कहा कि आपके राज्य में अमुक पुरुष ऐसा है जिसका मुख देखने से दिन भर भोजन भी नहीं मिलता। राजा ने कहा—यदि ऐसा है तो हम कल सबसे पहले उसका मुख देखकर तुम्हारे कथन की परीक्षा करेंगे, देखें हमें भोजन मिलता है या नहीं। राजा ने उस अभागे का मुख देखा। संयोग ऐसा हुआ कि उस दिन राजा को दिन भर अधिक कार्य होने से भोजन करने का सुभीता न हुआ। राजा ने सोचा कि यह व्यक्ति सचमुच मन्द भागी है, हमारे राज्य के लिये यह अहितकर है, ऐसा बदकिस्मत आदमी राज्य में नहीं रहना चाहिये। अतः राजा ने उससे कहा, देखो तुम अभागे हो, सवेरे हमने तुम्हारा मुख देखा था तो दिन भर हमें भोजन न मिला, यदि तुम हमारे राज्य में रहोगे तो न जाने तुम्हारा दर्शन करने की सजा के रूप में कितनों को भूखा रहना पड़ेगा। हम तुम्हें फांसी की सजा देते हैं।

वह व्यक्ति कभी भी अपने को हीन नहीं समझता था। उसने धैर्य से कहा—राजन्! मैं तुच्छ नहीं हूँ अपने

मन से मेरे प्रति यह दुर्भावना निकाल दीजिये। आपका मेरे ऊपर यह मिथ्या आरोप है कि मेरा मुख देखने से आपको भोजन नहीं मिला। मुझे आपका मुख देखकर फाँसी का हुक्म मिला है, अतएव मेरी अपेक्षा तो आप तुच्छ और अभागे प्रमाणित हो रहे हैं।

राजा ने इस युक्ति पर विचार किया, तो संदेह के काले बादल भाग गये। आत्मग्लानि के दिव्य प्रकाश में उन्हें यह बोध हुआ कि किसी को तुच्छ नहीं समझना चाहिये। जैसे हम अपने को तुच्छ, हीन न समझें वैसे ही हम दूसरों को तुच्छता का भ्रम न करायें।

८२. परमात्मा का अमर राजकुमार अपने पिता की सम्पूर्ण दिव्य शक्तियों का सच्चा उत्तराधिकारी है। इच्छा और प्रयत्न करने पर सब कुछ उसे मिल सकता है। कोई भी दिव्य गुण ऐसा नहीं है जो अपने परम पिता के खजाने से न पा सके। हाँ श्रद्धा की आवश्यकता है। ईश्वर में, उनकी कृपा में और आत्मा के अमर पने में सच्ची पूर्ण और अटल श्रद्धा, विश्वास रक्खो, ध्यान करो और अपने को दिव्य प्रकाश की ओर अनावृत करदो।

८३. अधिकांश मनुष्य इस कारण अधोगति को प्राप्त हो रहे हैं कि उन्हें जो कार्य सम्पादन करना चाहिये, जो जीवन का लक्ष्य है वह नहीं करते। आश्चर्य है कि

हम बुद्धिमान् होकर भी उस मार्ग का अनुशरण नहीं करते जो कल्याणकारी है और जीवन में सुख की वृद्धि कर सकता है। थोड़े से मोह के चक्कर में फँसकर हम अयोग्य कार्यों की ओर प्रेरित होते हैं, उन्हें ही सुख का मूल समझ अपने वास्तविक स्वरूप को भूले रहते हैं। यह माया मोह का जाल हमें अविवेक की गलियों में इधर-उधर भटकाता रहता है। इसी भोग और ऐश्वर्य में हम निज जीवन की इतिश्री कर देते हैं, कभी गहराई में उतर कर आत्म तत्व का विचार नहीं करते, खेद है यह हमारी कैसी मूढ़ता है।

८४. हे अविनाशी आत्माओ! तुम्हारे जीवन का ध्येय केवल खा पकाकर जीवन की इतिश्री कर देना ही नहीं है, तुम इस अस्थि मांस, चर्म युक्त शरीर में प्रतीत होने वाले, क्षणिक आवेशों के झमेलों में फँसे रहने के लिये नहीं बने हो।

८५. तुम इस चञ्चल एवम् अस्थिर मन की छीना झपटी में लगे रहने के हेतु पृथ्वी पर नहीं आये हो, तुम्हारा जन्म स्वेच्छानुसार निरंकुश होकर विषय वाटिका में विचरने के लिये नहीं हुआ है, तुम अपनी इन्द्रियों के दास नहीं हो। निम्न प्रवृत्तियों में इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें, परमात्मा ने तुम्हें यथेष्ट साधन अपनी अभीष्ट सिद्धि के लिये प्रदान किये

हैं तुम जितना उच्च बनना चाहो बन सकते हो। अपने को दीन हीन मानने से तुम अपने उज्वल भविष्य को कालिमामय बनाते हो। उठो जागो और निज स्वरूप को पहचानो, उसका सत्कार करो।

## तुम अकेले हो, पर शक्तिहीन नहीं।

८६. पक्षी फल न रहने पर वृक्ष को छोड़ देते ह, सारस जल सूखने जाने पर सरोवर का परित्याग कर देते हैं, मृग दग्ध वन को छोड़कर भाग जाते हैं, मन्त्रीगण श्री हीन राजा को छोड़ देते हैं। आपको अपना मित्र कहने वाले व्यक्ति आपत्तिकाल आने पर हाथ झाड़कर दूर खड़े हो जाते हैं, परिवार के व्यक्ति तक जब उनका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता तो मनुष्य का परित्याग कर देते हैं, सब लोग स्वार्थवश झूठा प्रेम करते हैं, वास्तव में कौन किसका प्रिय है; तुम अकेले हो। कितने ही व्यक्ति इस संसार का यह अकेलापन न जानकर दूसरों से कटु या असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार पाकर बड़े दुःखी होते हैं। जो व्यक्ति दूसरों से अनावश्यक झूठी आशाएं लगाये रहते हैं, वे निराश होकर अन्त में संसार की कठोरता का अनुभव करते हैं।

मनुष्य का अकेलापन इस बात से प्रकट होता है कि वह इस पृथ्वी पर अकेला ही आया है, अकेला ही माता

की गोद में पलता रहा और बड़ा हो गया। बड़ा होने पर उसे भाई, बहिन, माता-पिता, परिवार का ज्ञान हुआ, किन्तु फिर भी वह अनेक दृष्टियों से अकेला ही रहा। अपने स्वास्थ्य, विचार के विषय में वह अकेला है। जब आपके स्वास्थ्य में विकार होता है तो कौन आकर अपना अंग उधार दे सकता है, आपके कान, नाक, मुँह, हाथ, पांव बेकार होने पर कौन उनकी जगह अपने दे सकता है। आपके पाप-पुण्य, उत्कर्ष या सत् कार्यों का भार आपको छोड़कर किसके ऊपर हो सकता है, अपने आप में आप अकेले हैं, अपने पुण्यों का फल सुख भोग करने में भी आप अकेले हैं, अपने जीवन के दुःख तकलीफ, लाभ-हानि, ज्ञान-अज्ञान, बन्धन मोक्ष आदि सब में आप अकेले ही जिम्मेदार हैं, दूसरों को अपनी असफलताओं का कारण मत समझिये। स्वयं आप ही अपनी सफलता असफलता के लिये जिम्मेदार हैं।

यह ठीक है कि आप अकेले हैं परन्तु घबराने, दिल छोटा करने, निराश होने की आवश्यकता नहीं है। भगवान् की असीम शक्ति और उसकी कृपा का हाथ सदैव आपके पास है। उस पर विश्वास करके अपने साधन में अग्रसर होते हुए जीवन-यात्रा सफल कीजिये और यह निश्चय रखिये कि तुम अकेले ही सब कार्य सफलता से पूर्ण करने में समर्थ हो। तुम्हें ईश्वर के सिवाय

किसी का आश्रय नहीं खोजना है। अनेक जन्मों के उप-रांत इस परम पुरुपार्थ के साधन रूप नर देह को जो अनित्य होने पर भी परम दुर्लभ है, पाकर धीर पुरुष को उचित है कि आगे बढ़ता रहे।

तुम अकेले होते हुए भी परमेश्वर की शक्तियां लेकर अवतरित हुए हो, फिर घबराने, डरने और भय मानने का क्या कारण है? हे अविनाशी आत्माओ! तुम तुच्छ नहीं हो, कायर नहीं हो, तुम्हें कोई सता नहीं सकता। तुम अनन्त शक्तिशाली हो।

८७. सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं। उठो और साधन करो। तुम स्वयं कल्प-वृक्ष हो, पारस हो, अमृत हो और सफलता की साक्षात् मूर्ति हो। तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। तुम इन्द्रियों के गुलाम नहीं हो, गन्दी वासनाएं तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं। पाप और अज्ञान में इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें।

८८. हे महान् पिता के महान् पुत्रो! अपनी महा-नता को पहचानो। उसे समझने खोजने और प्राप्त करने में तत्परता से जुट जाओ। अपनी वास्तविकता को पहि-चानना, अपनी कमजोरियों तथा शक्तियों से परिचित हो जाना ही स्वाधीनता का मार्ग है।

८९. हमें स्वयं अपना उद्धार करना चाहिये। अपनी

हिम्मत हम कभी न हारें, क्योंकि हमारा आत्मा ही (मन) हमारा मित्र और हमारा आत्मा ही हमारा शत्रु है, कोई दूसरा शत्रु मित्र नहीं है।

## कथनी और करनी

९०. कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करे, नारायण सो होय॥

९१. कहते हो करते नहीं, मुंह के बड़े लबार।
तुलसी ऐसे नरन को, बार बार धिक्कार॥

९२. हमें क्या करना चाहिये, किन बातों से बचना चाहिये, क्या उचित है क्या अनुचित है, हम सब इस बारे में बहुत कुछ जानते हैं, समस्या यह है कि अन्ततः कार्य हम कितना करते हैं। जो हम सोचते हैं क्या वह करते भी हैं? वास्तव में शुभ योजनाएं तो हम बहुत बनाते हैं, उत्तमोत्तम विचारों से प्रसन्न होते हैं किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं करते, यही दुर्बलता है। हमें विचार के पश्चात् सतत कार्य करना चाहिये। (साधन) करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है। मन भर ज्ञान से एक छटांक क्रिया अधिक है।

९३. मन, वाणी और कार्य में जो एक हो वही सच्चा महात्मा है। जो कोरा चिन्तन ही चिन्तन करते रहते हैं वे निराशावादी हो जाते हैं।

९४. किसी महात्मा का कथन है कि जो शुभ विचार उत्पन्न हो उसे तुरन्त कार्य रूप में परिणित कर डालिये, अन्यथा वह जिस तेजी से मन में आया है वैसे ही एका-एक गायब हो जायगा और आप उस सुअवसर से लाभ न उठा सकेंगे।

९५. करनी और कथनी में मेल होना ही आत्म-सुधार का उपाय है।

९६. ईश्वर की अनुकम्पा, सहायता में विश्वास ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को हर समय सहायता देती है।

९७. आस्तिकवाद हमारी सम्पदा है ईश्वर में विश्वास हमें सदा उन्नत करता है और संकट के समय आन्तरिक शान्ति प्रदान करता है। ईश्वर हमारे हृदय मन्दिर में प्रकाश करने वाला तेज पुंज है, हमारे जीवन में प्राण है, ईश्वरीय आशा विहीन अर्थात् नास्तिक व्यक्ति उस सूखी पत्ती की तरह है जो विपरीत तनिक हवा में यत्र-तत्र मारी-मारी फिरती है।

९८. उद्यम अथवा पुरुपार्थ से सम्पूर्ण कार्य सफल होते हैं केवल मनोरथ से नहीं; क्योंकि सोते हुये सिंह के मुख में मृग प्रवेश नहीं करते, इससे सिद्ध होता है कि पुरुपार्थ ही श्रेष्ठ है।

९९. हम जीवन के उपभोग के लिये नाना वस्तुएँ एकत्र कर लेते हैं, अनेक वस्तुएँ हमारे पास होती हैं, हम

इसी को साध्य मान लेते हैं, वास्तव में यह वस्तुएँ तो साधनमात्र हैं। हमारी स्थिति उस यात्री के समान है जो यात्रा के लिये नाना वस्तुओं का तो संग्रह कर लेता है पर यात्रा पर कभी नहीं निकलता। इसी प्रकार हम यह मानते रहें कि जब सारे भौतिक अभाव दूर जायेंगे, तब हम जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ करेंगे सर्वथा भ्रान्तिमूलक विचार है। अभाव हमारे जीवन की एक सदा साथ चलने वाली परछाई है, जहां हम जायेंगे, जिस स्थिति में हम रहेंगे, जिस देश काल में निवास करेंगे, अभाव हमारे साथ चलते जायेंगे। कारण, एक अभाव की पूर्ति होते ही दो और सामने आ जाते हैं। इसलिये जैसी स्थिति हो उसी में साधन आरम्भ कर देना चाहिये।

१००. वास्तव में उन्नति की जड़ स्वयम् मनुष्य के अन्दर है परिस्थितियों में नहीं।

१०१. वास्तव में सफल व्यक्ति उसे कहना चाहिये जो नई परिस्थितियों, विषमताओं और अड़चनों में भी अपने जीवन का संतुलन रक्खे, अपना आदर्श न छोड़े, पूरी तरह लगा रहे, पूर्ण प्रसन्न रहे, किसी अड़चन का अनुभव न करे। अतः असुविधाओं, कष्टों, विषम परिस्थितियों, प्रतिकूलताओं से घबराइये नहीं, ये सब मन की दुर्बलता होने पर मनुष्य को विचलित करती हैं।

## दूसरों का सहारा एक मृगतृष्णा है !

१०२. मनुष्य वन्धु बाँधवों, इष्ट मित्रों तथा परिवार में अनेक व्यक्तियों से घिरा हुआ है, वह सहायता के लिये इधर-उधर उत्सुक नेत्रों से देखता रहता है, यदि कोई सहायता कर देता है तो वह प्रसन्न हो जाता है। किन्तु जहां बेरुखी, शुष्कता, नीरसता दीखती है वहीं अपने मन में आन्तरिक दुःख का और निराशा का अनुभव करता है। तनिक सी प्रशंसा से फूलकर कुप्पा हो जाना अथवा अपनी आलोचना सुनकर आन्तरिक दुःख का अनुभव करना निर्बल मन का विकार है।

१०३. सावधान ! अपना साधन न छोड़ियेगा, चाहे मन कितना ही क्यों न छटपटाये। इन्द्रियां तो व्यर्थ ही इधर-उधर भागने वाली हैं। ये आपको किसी भी खड्डे में गिरा सकती हैं। इन्द्रियों को वश में कर लें तो आप विजयी कहलायेंगे। इन्द्रियां चोर की तरह अवसर ताकती रहती हैं जब चाहें वे आपको नरक में डाल पटक दें, पतन कर दें। यदि इन चोरों को अवसर मिलेगा तो यह सारा करा कराया चौपट कर देंगी।

## स्वाध्याय

१०४. स्वाध्याय में सब से अधिक महत्व जिस तत्व का है वह हमारी ग्राहक दृष्टि है। यों तो हम बहुत

सी पुस्तकें पढ़ते हैं, अनेक व्यक्तियों के भाषण सुनते हैं, किन्तु जो कुछ देखते पढ़ते अथवा सुनते हैं उसमें महत्व इस बात का है कि हम वास्तव में ग्रहण कितना करते हैं।

१०५. वह व्यक्ति भला क्योंकर स्वस्थ एवं शक्तिशाली बन सकता है जो भोजन तो बहुत परिमाण में करता है और भोजन भी पौष्टिक है पर उसकी पाचन-क्रिया व्यवस्थित नहीं है वह जो खाता है, निकल जाता है। जब तक उदर में भोजन के रस एकत्रित होकर स्थाई रूप से स्वास्थ्य शक्ति नहीं देते, तब तक उसकी शक्ति में वृद्धि असम्भव है। यही हाल मस्तिष्क का है यदि पढ़ने सुनने पर आपका मस्तिष्क बहुत कम ग्रहण करता है तो स्वाध्याय से अधिक लाभ सम्भव नहीं है इसलिये जो पढ़ो, सुनो वह मन लगाकर करो और उसके अनुसार जीवन बनाओ, तभी वास्तविक स्वाध्याय का लाभ है।

## किन्तु और परन्तु

१०६. हम आध्यात्मिक उन्नति चाहते हैं, उसके द्वारा होने वाले अनेक लाभों से हम भलीभांति परिचित हैं, हमने अन्य मुमुक्षुओं को ऊँचा चढ़ते हुये देखा है, हमारी भी इच्छा हुई है कि हम भी नाना जंजालों से भरे हुये अँधेरे जंगल से निकल कर प्रकाश को प्राप्त करें, जो बन्धन हमें बाँधे हुए हैं उन्हें तोड़ फोड़ दें।

'किन्तु' हम चाहते हैं कि अन्तर आत्मा की पवित्रता से हृदय के कषाय कल्मषों को धोकर स्वच्छ हो जायँ तथा मानसिक गुलामी से पीछा छुड़ाकर पूर्णत्व प्राप्त कर लें, हँस की वृत्ति ग्रहण कर दूध को ही ग्रहण करें। परन्तु...। इस प्रकार मनुष्य निरन्तर बहुत सी उत्कृष्ट योजनायें बनाते हैं, मन में एक से एक ऊँचे विचारों को लाते हैं, कुछ देर उन पर विचार करते हैं, कल्पना में एक सुखदायी संसार को देखते हैं और प्रसन्न होते हैं किन्तु जब वास्तविक कार्य करने का समय आता है तब अनेक किन्तु तथा परन्तुओं के फेर में पड़कर उन शुभ भावनाओं का अन्त कर देते हैं और इसी दुःखदायी चक्र में घूमते भटकते रहते हैं।

## आपके वश की बात

१०७. यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मित्र, तुम्हारे सम्बन्धी कभी भी तुमसे पृथक् न हों, तो तुम मूर्ख हो; क्योंकि तुम ऐसी चीज की चाह कर रहे हो जो तुम्हारे वश की नहीं है और ऐसी अनहोनी इच्छाओं में निमग्न रहने के कारण तुम्हें दुःख होगा।

इसी प्रकार यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा नौकर अथवा पुत्र, पड़ोसी आदि कोई भूल न करे, तो तुम निरे मूर्ख हो; तुम ऐसी वस्तु चाह रहे हो, जो सम्भव

नहीं है अतः तुम दुःखी हो।

यदि आप चाहते हैं कि जीवन में आपको असफलता, मजबूरी, कठिनाई कभी न मिले, तो यह असम्भव है, आपके वश की बात नहीं है। जीवन मृदुल भावनाओं की मृदु वाटिका है तो कँटक और धूल कठोर चट्टानों, पत्थरों की शुष्कता और कठोरताओं से भरा है सभी कुछ आपको चखना है, मधुरता भी और कड़वाहट भी।

अतएव यदि संसार में सुख और शान्ति चाहते हैं तो जो आपके वश की बात हैं उन्हीं को विकसित कीजिये। और जो आपके वश की बात नहीं हैं उन पर व्यर्थ चिन्तन या पश्चात्ताप मत कीजिये। स्वयं अपने मन के स्वामी बनिये, संसार और व्यक्तियों को अपनी राह जाने दीजिये।

१०८. दूसरों को अपने प्रति ईर्ष्यालु समझना, अपने आलोचक और विरोधी समझना मनुष्य की अपनी आन्तरिक दुर्बलता के चिन्ह हैं। आप यह मानिये कि सब आपके मित्र हैं कोई आपके प्रति ईर्ष्यालु नहीं, कोई आपकी चुगली नहीं करता, मित्र भाव रखने से मन में शान्ति बनी रहती है।

## वर्तमान का सदुपयोग करें

१०९. जो कार्य कर्त्तव्य हमारे सामने है उस पर

ध्यान न देकर हम सदा बीती घटनाओं की चिन्ता करते रहते हैं। यदि मैं ऐसा न करता तो यह कष्ट न आता, यदि उसने मुझे यह सहायता दी होती तो ऐसा हो जाता, अथवा कहीं ऐसा न हो जाय, आदि मिथ्या भयों से सदा व्याकुल और दुःखी रहते हैं अर्थात् भूत और भविष्य में निवास करते हैं जब कि हमारा निवास केवल वर्तमान में ही सम्भव है और उसी को उपयोगी बनाकर हम सफल बन सकते हैं। जो बीत चुका वह तो मर गया उसकी चिन्ता क्यों करें, जो भविष्य में आने वाला है वह वर्तमान के सदुपयोग से उज्वल बन जायेगा।

११०. खुले दिल से अपनी भूल स्वीकार करें। यदि आप भूल को स्वीकार न करें तो आपकी आत्मा पर एक प्रकार का आन्तरिक भार रहता है। आत्मा तो प्रखर ज्योति की तरह है उसके सामने कालिमा कैसे टिक सकती है। यदि आप भूल को स्वीकार कर मुक्त हृदय से माफी मांग लेते हैं तो मन के गुप्त प्रदेश से कालिमा चेतना के ऊपरी स्तर पर आ जाती है, चेतना के सन्मुख आते ही मानसिक क्लेश दूर हो जाते हैं अतः भूल को स्वीकार करना आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ना है।

१११. जो व्यक्ति केवल कल्पनाओं के ही महल बनाता है कार्य कुछ नहीं करता, इससे क्या लाभ? यह

सत्य है कि उस व्यक्ति में सोचने और नये-नये मनसूबे, नवीन योजनायें बनाने, बढ़ बढ़कर बातें करने के गुण हैं पर बिना कार्य को सम्पादन किये ये सब व्यर्थ हैं।

११२. जीवन एक संग्राम है। इस जीवन में वही विजयी होता है जो सीना तानकर कष्टों, प्रतिकूलताओं का मुकाबला कर सकता है। कष्टों की घनघोर घटाओं में बिजली की तरह मुस्करा सकता है। परिस्थितियों का दास न बनकर उनका स्वामी बनता है, जो मर जाना पसन्द करता है पर झुकता नहीं।

११३. जो होना है वह होकर रहेगा, यदि आने वाली दुर्घटना, दुःख भरे अवसर आने वाले ही हैं उनसे नहीं बचा जा सकता, तो उनसे मेल कर लेना ही ठीक है।

११४. जिन बातों को आप बदल नहीं सकते, जो आपके हाथ की बात नहीं है उसके विषय में चिन्ता करने से क्या लाभ?

## अपने आप पर स्वामी बन कर रहिये

११५. आप कहेंगे हम तो स्वयं अपने स्वामी आप हैं ही, फिर आपके कथन का क्या तात्पर्य है? यदि आप अपनी इन्द्रियों के वश में हैं, यदि मन के प्रलोभनों में बह जाते

हैं, यदि आपको विविध क्षुद्र प्रलोभन नांच नंचाया करते हैं और आप इनके वश में हैं तो वास्तव में आप स्वामी नहीं, गुलाम ही हैं।

११६. इन्द्रियों की दासता ऐसी ही है जैसे कठ-पुतली में बँधे हुए सूक्ष्म तन्तु, जिधर को तन्तु हिले उधर को ही कठपुतली ने हाथ पांव हिलाये, स्वयं कठपुतली का कोई अस्तित्व नहीं है। उसी प्रकार इन्द्रियों के दास का हाल है।

११७. यदि इन्द्रियों को यूं ही बेलगाम जिधर चाहें छोड़ दिया जाये, तो निश्चय जानिये वे मनुष्य को ऐसे गड्ढे में ले जाकर पटकेंगी जहां से उठना असम्भव हो जावेगा।

११८. मनुष्य की वासनाएं अनन्त हैं, इच्छाओं की कोई गिनती नहीं, तृष्णाओं की संख्या उतनी ही है जितने आकाश के सितारे। एक वासना, एक इच्छा अथवा एक तृष्णा के पूर्ण होते ही दस नई इच्छाओं का जन्म हो जाता है। इस प्रकार कामनाओं और नित्य नई आवश्यकताओं का मोह-बन्धन मनुष्य को बांधे रहता है। सांसारिक भोग विलास का हरदम दास बना रहता है इसलिये अपनी इन्द्रियों की रखवाली वैसे ही करो जैसे एक कर्त्तव्यनिष्ठ सिपाही खजाने की करता है। यदि चोरों को अवसर मिलेगा तो इन्हीं दरवाजों से घुस

कर सारा खजाना खाली कर देंगे। इसलिये खबरदार! इन्द्रियों पर अपनी पूरी धाक रखो, उन्हें अपने वश में रखो, अन्यथा सारा करा कराया चौपट कर देंगी।

११९. मनुष्य शक्ति सामर्थ्य और सफलता का सिपाही है, अज्ञान एवं मोह वश होकर अपने आपको दीन-हीन शक्ति विहीन समझता है, अपनी दैवी शक्तियों को विस्मृत कर कायर का सा जीवन व्यतीत करना कितनी बड़ी मूर्खता है। जन्म लिया, अभाव और दुःखों में पलते पनपते रहे और विषादमय जीवन व्यतीत करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गये, ऐसा जीवन किस अर्थ; यह तो आदि पिता परमात्मा का अपमान है।

१२०. हमारा सुधार क्यों नहीं होता, हम क्यों मोह-निद्रा में पड़े रहते हैं? वास्तव में हमें अपनी त्रुटियों का, कमजोरियों का ज्ञान नहीं होता। हम अपने को निर्दोष और महात्मा मान बैठते हैं।

१२१. जो अपनी दुर्बलता का दर्शन करता है उस के लिये सच्चा पश्चाताप कर उसे दूर करने की इच्छा से सतत उद्योग प्रारम्भ करता है उसका आधा काम तो बन गया समझो।

१२२. ऐ मनुष्य! तू महान् है। ईश्वर के साक्षात्कार के लिये, इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये इस मानव सृष्टि में आया है। तू सफलता के लिये, पूर्ण विजय के

लिये निर्मित किया गया है। इससे तुझे कोई विचलित नहीं कर सकता। परमपिता परमात्मा की यह इच्छा कदापि नहीं है कि तू अपनी परिस्थिति के हाथ का कठपुतला ही बना रहे, अपनी मनोवृत्ति का गुलाम ही बना रहे।

१२३. ऐ अक्षय, अविनाशी आत्मा! तू तुच्छ नहीं महान् है, तू अनन्त शक्ति का पुञ्ज है, तू साक्षात् पारस है, तेरा मन कल्पवृक्ष है, वह तेरी आज्ञाओं का पालन करेगा, तू तो अमृत स्वरूप है भय और चिन्ता को पास न फटकने दे।

१२४. विश्व में सबसे अधिक महान् कार्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना है।

१२५. तीव्र प्रवाह में प्रवाहित क्षुद्र तिनके की तरह बहाव में यों ही बह जाने के लिये तुम नहीं बने हो। तुम महान् पिता के महान् पुत्र हो, तुम स्वयं अपने भाग्य की रचना कर सकते हो, तुम जो बोते हो वही काटते हो। अपनी उन्नति के पर्वत पर तुम्हें स्वयम् अपनी साधना से चढ़ना है, अपनी आत्मा को तुम्हें स्वयम् ही जाग्रत करना है, जब तक तुम धैर्य और उत्साह से चलने को कटिबद्ध नहीं होओगे, तब तक बाहर की कोई शक्ति तुम्हारी सहायता नहीं करेगी॥

## रुपये से क्या मिलता है और क्या नहीं मिलता

१२६. रुपये से सुन्दर स्वादिष्ट पकवान, मिठाई, बढ़िया भोजन खरीद सकते हैं पर भूख नहीं, भूख ढेर के ढेर रुपये देने पर भी बाजार में नहीं मिलेगी।

रुपये से शक्तिवर्धक अनेक पदार्थ, अनेक दवाइयां मिलेंगी पर शक्ति नहीं। शक्ति के लिये मनुष्य को परिश्रम रूपी धन व्यय करना होगा। धन से मनुष्य ऐश्वर्यशाली बन सकता है पर सच्चा आनन्द और शान्ति कदापि न मिल सकेगी। रुपये से चश्मा मिलेगा पर दृष्टि नहीं। कोमल शय्या मिलेगी पर निद्रा नहीं। रुपये से नौकर मिल सकते हैं पर सच्ची सेवा नहीं। संगी साथी अनेक इकट्ठे हो जायेंगे पर प्रेमी नहीं।

संसार में उत्तम वस्तुएँ प्रायः बिना रुपये पैसे के ही प्राप्त हुआ करती हैं।

१२७. अपराध मनुष्य के मुख पर लिखा रहता है। अग्नि को वस्त्र में छिपाकर रखिये, तो वह अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, धीरे धीरे समीपस्थ वस्त्र अन्दर से जल जायेंगे। इस अग्नि का धुआं चाहे उस समय दिखाई न दे, किन्तु अदृश्य रूप में वह सदा वर्तमान है। पाप बुराई ऐसी ही अग्नि है जो अन्दर ही अन्दर मनुष्य में विकार उत्पन्न करती है। अपराधी चाहे यह

समझता रहे कि वह अपराध को छिपा सकता है परन्तु वास्तव में पाप छिपता नहीं। मनुष्य का अपराधी मन उसे सदा व्यग्र, अशान्त, चिन्तित रखता है। पाप, बुराई पानी की तरह है, यह नीचे की ओर खींचती है, इसी प्रकार दुर्गुण मनुष्य को नीचे की ओर ले जाता है।

१२८. विचारपूर्वक देखें तो दोष से तो हम सभी परिपूर्ण हैं किन्तु दोषमुक्त होना हम सबका धर्म है।

१२९. मनुष्य में एक कमजोरी है वह यह कि वह अपनी भूलों और गलतियों की ओर तो ध्यान देता नहीं, दूसरों का दोष देखता है। दूसरे के दोष निकालना एक ऐसी कमजोरी है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी कमजोरियों पर पर्दा डाले रखना चाहता है। यदि हमसे कोई भूल हो जाती है तो भी हम उसका उत्तरदायित्व दूसरों पर ही डाले रखना चाहते हैं, कभी-कभी अपनी भूलों को ही उपयोगी या आवश्यक सिद्ध करने का दुःसाहस करते हैं, यह रूप भी बड़ा घृणित है।

१३०. विचारवान वे हैं जो दूसरों की भूल न देखकर अपने दोष और दुर्गुणों को निकालने का प्रयत्न करते हैं। थोड़ा सा पाप, जरा सा झूठ, तनिक सा वासनामय चिन्तन तक को भी मन में न आने दीजिये। एक-एक बूंद से पाप का घड़ा भर जाता है, थोड़ी-थोड़ी पाप की बात सोचने से ही मनुष्य कुछ समय में पाप के

पंक में डूब जाता है इसलिये बहुत सावधान रहिये। अपने भीतरी दोषों को ढूंढिये और उन्हें नष्ट कर बाहर निकालने में जुट जाइये। दुर्गुण रूपी कांटों को हटाकर उनके स्थान पर अपने हृदय उद्यान में सद्गुणों के पुष्पमय पौधे लगाइये।

१३१. हम क्षुब्ध, चंचल, परेशान इसी कारण हैं कि सर्वव्यापी परमात्मा को भूल गये हैं। सच्चे सुख, शान्ति और परमानन्द के इस अक्षय भण्डार को छोड़ दिन रात कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगा रहे हैं, यह कभी विचार ही नहीं करते कि हम इस संसार में क्यों आये, हमारा क्या कर्तव्य है।

१३२. हमने अपनी आत्मा के चारों ओर व्यर्थ की आवश्यकताओं की ऐसी मोटी दीवारें खड़ी करली हैं कि हमें क्षण भर भी चैन नहीं, शान्ति नहीं। जो जितनी आवश्यकताओं की वृद्धि करता है वह उतना ही दुःखी रहता है। वास्तव में सुख कहीं मोल नहीं बिकता, वह किसी की खुशामद, सिफारिश या प्रेरणा से प्राप्त नहीं होता। वह तो हमारी आत्मा के भीतर ही है, आत्मा से बाहर उसकी कहीं भी सत्ता नहीं है। जब हमारा अन्तःकरण शुद्ध सात्विक हो जाता है, इन्द्रियां वश में हो जाती हैं, मन एकाग्र होने लगता है, हमारी समस्त क्रियाएँ मुमुक्षा के लिये होती हैं, तब हमें सच्चे सुख के

किसी का आश्रय नहीं खोजना है। अनेक जन्मों के उपरांत इस परम पुरुषार्थ के साधन रूप नर देह को जो अनित्य होने पर भी परम दुर्लभ है, पाकर धीर पुरुष को उचित है कि आगे बढ़ता रहे।

तुम अकेले होते हुए भी परमेश्वर की शक्तियां लेकर अवतरित हुए हो, फिर घबराने, डरने और भय मानने का क्या कारण है? हे अविनाशी आत्माओ! तुम तुच्छ नहीं हो, कायर नहीं हो, तुम्हें कोई सता नहीं सकता। तुम अनन्त शक्तिशाली हो।

८७. सफलता और आनन्द तुम्हारे जन्मजात अधिकार हैं। उठो और साधन करो। तुम स्वयं कल्पवृक्ष हो, पारस हो, अमृत हो और सफलता की साक्षात् मूर्ति हो। तुम शरीर नहीं हो, आत्मा हो। तुम इन्द्रियों के गुलाम नहीं हो, गन्दी वासनाएं तुम्हें मजबूर नहीं कर सकतीं। पाप और अज्ञान में इतनी शक्ति नहीं कि वे तुम्हारे ऊपर शासन कर सकें।

८८. हे महान् पिता के महान् पुत्रो! अपनी महानता को पहचानो। उसे समझने खोजने और प्राप्त करने में तत्परता से जुट जाओ। अपनी वास्तविकता को पहिचानना, अपनी कमजोरियों तथा शक्तियों से परिचित हो जाना ही स्वाधीनता का मार्ग है।

८९. हमें स्वयं अपना उद्धार करना चाहिये। अपनी

हिम्मत हम कभी न हारें, क्योंकि हमारा आत्मा ही (मन) हमारा मित्र और हमारा आत्मा ही हमारा शत्रु है, कोई दूसरा शत्रु मित्र नहीं है।

## कथनी और करनी

९०. कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करे, नारायण सो होय ॥

९१. कहते हो करते नहीं, मुंह के बड़े लबार।
तुलसी ऐसे नरन को, बार बार धिक्कार ॥

९२. हमें क्या करना चाहिये, किन बातों से बचना चाहिये, क्या उचित है क्या अनुचित है, हम सब इस बारे में बहुत कुछ जानते हैं, समस्या यह है कि अन्ततः कार्य हम कितना करते हैं। जो हम सोचते हैं क्या वह करते भी हैं? वास्तव में शुभ योजनाएं तो हम बहुत बनाते हैं, उत्तमोत्तम विचारों से प्रसन्न होते हैं किन्तु उनके अनुसार कार्य नहीं करते, यही दुर्बलता है। हमें विचार के पश्चात् सतत कार्य करना चाहिये। (साधन) करने से ही सिद्धि प्राप्त होती है। मन भर ज्ञान से एक छटांक क्रिया अधिक है।

९३. मन, वाणी और कार्य में जो एक हो वही सच्चा महात्मा है। जो कोरा चिन्तन ही चिन्तन करते रहते हैं वे निराशावादी हो जाते हैं।

६४. किसी महात्मा का कथन है कि जो शुभ विचार उत्पन्न हो उसे तुरन्त कार्य रूप में परिणित कर डालिये, अन्यथा वह जिस तेजी से मन में आया है वैसे ही एका-एक गायब हो जायगा और आप उस सुअवसर से लाभ न उठा सकेंगे।

६५. करनी और कथनी में मेल होना ही आत्म-सुधार का उपाय है।

६६. ईश्वर की अनुकम्पा, सहायता में विश्वास ऐसी शक्ति है जो मनुष्य को हर समय सहायता देती है।

६७. आस्तिकवाद हमारी सम्पदा है ईश्वर में विश्वास हमें सदा उन्नत करता है और संकट के समय आन्तरिक शान्ति प्रदान करता है। ईश्वर हमारे हृदय मन्दिर में प्रकाश करने वाला तेज पुंज है, हमारे जीवन में प्राण है, ईश्वरीय आशा विहीन अर्थात् नास्तिक व्यक्ति उस सूखी पत्ती की तरह है जो विपरीत तनिक हवा में यत्र-तत्र मारी-मारी फिरती है।

६८. उद्यम अथवा पुरुपार्थ से सम्पूर्ण कार्य सफल होते हैं केवल मनोरथ से नहीं; क्योंकि सोते हुये सिंह के मुख में मृग प्रवेश नहीं करते, इससे सिद्ध होता है कि पुरुपार्थ ही श्रेष्ट है।

६९. हम जीवन के उपभोग के लिये नाना वस्तुएँ एकत्र कर लेते हैं, अनेक वस्तुएँ हमारे पास होती हैं, हम

इसी को साध्य मान लेते हैं, वास्तव में यह वस्तुएँ तो साधनमात्र हैं। हमारी स्थिति उस यात्री के समान है जो यात्रा के लिये नाना वस्तुओं का तो संग्रह कर लेता है पर यात्रा पर कभी नहीं निकलता। इसी प्रकार हम यह मानते रहें कि जब सारे भौतिक अभाव दूर जायेंगे, तब हम जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य आरम्भ करेंगे सर्वथा भ्रान्तिमूलक विचार है। अभाव हमारे जीवन की एक सदा साथ चलने वाली परछाई है, जहाँ हम जायेंगे, जिस स्थिति में हम रहेंगे, जिस देश काल में निवास करेंगे, अभाव हमारे साथ चलते जायेंगे। कारण, एक अभाव की पूर्ति होते ही दो और सामने आ जाते हैं। इसलिये जैसी स्थिति हो उसी में साधन आरम्भ कर देना चाहिये।

१००. वास्तव में उन्नति की जड स्वयम् मनुष्य के अन्दर है परिस्थितियों में नहीं।

१०१. वास्तव में सफल व्यक्ति उसे कहना चाहिये जो नई परिस्थितियों, विषमताओं और अड़चनों में भी अपने जीवन का संतुलन रक्खे, अपना आदर्श न छोड़ें, पूरी तरह लगा रहें, पूर्ण प्रसन्न रहैं, किसी अड़चन का अनुभव न करे। अतः असुविधाओं, कष्टों, विषम परिस्थितियों, प्रतिकूलताओं से घबराइये नहीं; ये सब मन की दुर्बलता होने पर मनुष्य को विचलित करती हैं।

## दूसरों का सहारा एक मृगतृष्णा है।

१०२. मनुष्य बन्धु बांधवों, इष्ट मित्रों तथा परिवार में अनेक व्यक्तियों से घिरा हुआ है, वह सहायता के लिये इधर-उधर उत्सुक नेत्रों से देखता रहता है, यदि कोई सहायता कर देता है तो वह प्रसन्न हो जाता है। किन्तु जहां बेरुखी, शुष्कता, नीरसता दीखती है वहीं अपने मन में आन्तरिक दुःख का और निराशा का अनुभव करता है। तनिक सी प्रशंसा से फूलकर कुप्पा हो जाना अथवा अपनी आलोचना सुनकर आन्तरिक दुःख का अनुभव करना निर्बल मन का विकार है।

१०३. सावधान! अपना साधन न छोड़ियेगा, चाहे मन कितना ही क्यों न छटपटाये। इन्द्रियां तो व्यर्थ ही इधर-उधर भागने वाली हैं। ये आपको किसी भी खड्डे में गिरा सकती हैं। इन्द्रियों को वश में कर लें तो आप विजयी कहलायेंगे। इन्द्रियां चोर की तरह अवसर ताकती रहती हैं जब चाहें वे आपको नरक में डाल पटक दें, पतन कर दें। यदि इन चोरों को अवसर मिलेगा तो यह सारा करा कराया चौपट कर देंगी।

## स्वाध्याय

१०४. स्वाध्याय में सब से अधिक महत्व जिस तत्व का है वह हमारी ग्राहक दृष्टि है। यों तो हम बहुत

सी पुस्तकें पढ़ते हैं, अनेक व्यक्तियों के भाषण सुनते हैं, किन्तु जो कुछ देखते पढ़ते अथवा सुनते हैं उसमें महत्व इस बात का है कि हम वास्तव में ग्रहण कितना करते हैं।

१०५. वह व्यक्ति भला क्योंकर स्वस्थ एवं शक्तिशाली बन सकता है जो भोजन तो बहुत परिमाण में करता है और भोजन भी पौष्टिक है पर उसकी पाचन-क्रिया व्यवस्थित नहीं है वह जो खाता है, निकल जाता है। जब तक उदर में भोजन के रस एकत्रित होकर स्थाई रूप से स्वास्थ्य शक्ति नहीं देते, तब तक उसकी शक्ति में वृद्धि असम्भव है। यही हाल मस्तिष्क का है यदि पढ़ने सुनने पर आपका मस्तिष्क बहुत कम ग्रहण करता है तो स्वाध्याय से अधिक लाभ सम्भव नहीं है इसलिये जो पढ़ो, सुनो वह मन लगाकर करो और उसके अनुसार जीवन बनाओ, तभी वास्तविक स्वाध्याय का लाभ है।

## किन्तु और परन्तु

१०६. हम आध्यात्मिक उन्नति चाहते हैं, उसके द्वारा होने वाले अनेक लाभों से हम भलीभांति परिचित हैं, हमने अन्य मुमुक्षुओं को ऊँचा चढ़ते हुये देखा है, हमारी भी इच्छा हुई है कि हम भी नाना जंजालों से भरे हुये अँधेरे जंगल से निकल कर प्रकाश को प्राप्त करें, जो बन्धन हमें बाँधे हुए हैं उन्हें तोड़ फोड़ दें।

'किन्तु' हम चाहते हैं कि अन्तर आत्मा की पवित्रता से हृदय के कषाय कल्मषों को धोकर स्वच्छ हो जायँ तथा मानसिक गुलामी से पीछा छुड़ाकर पूर्णत्व प्राप्त कर लें, हँस की वृत्ति ग्रहण कर दूध को ही ग्रहण करें। परन्तु...। इस प्रकार मनुष्य निरन्तर बहुत सी उत्कृष्ट योजनायें बनाते हैं, मन में एक से एक ऊँचे विचारों को लाते हैं, कुछ देर उन पर विचार करते हैं, कल्पना में एक सुख-दायी संसार को देखते हैं और प्रसन्न होते हैं किन्तु जब वास्तविक कार्य करने का समय आता है तब अनेक किन्तु तथा परन्तुओं के फेर में पड़कर उन शुभ भावनाओं का अन्त कर देते हैं और इसी दुःखदायी चक्र में घूमते भटकते रहते हैं।

## आपके वश की बात

१०७. यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मित्र, तुम्हारे सम्बन्धी कभी भी तुमसे पृथक् न हों, तो तुम मूर्ख हो; क्योंकि तुम ऐसी चीज की चाह कर रहे हो जो तुम्हारे वश की नहीं है और ऐसी अनहोनी इच्छाओं में निमग्न रहने के कारण तुम्हें दुःख होगा।

इसी प्रकार यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा नौकर अथवा पुत्र, पड़ोसी आदि कोई भूल न करे, तो तुम निरे मूर्ख हो; तुम ऐसी वस्तु चाह रहे हो, जो सम्भव

नहीं है अतः तुम दुःखी हो।

यदि आप चाहते हैं कि जीवन में आपको असफलता, मजबूरी, कठिनाई कभी न मिले, तो यह असम्भव है, आपके वश की बात नहीं है। जीवन मृदुल भावनाओं की मृदु वाटिका है तो कंटक और धूल कठोर चट्टानों, पत्थरों की शुष्कता और कठोरताओं से भरा है सभी कुछ आपको चखना है, मधुरता भी और कड़वाहट भी।

अतएव यदि संसार में सुख और शान्ति चाहते हैं तो जो आपके वश की बात हैं उन्हीं को विकसित कीजिये। और जो आपके वश की बात नहीं हैं उन पर व्यर्थ चिन्तन या पश्चात्ताप मत कीजिये। स्वयं अपने मन के स्वामी बनिये, संसार और व्यक्तियों को अपनी राह जाने दीजिये।

१०८. दूसरों को अपने प्रति ईर्ष्यालु समझना, अपने आलोचक और विरोधी समझना मनुष्य की अपनी आन्तरिक दुर्बलता के चिन्ह हैं। आप यह मानिये कि सब आपके मित्र हैं कोई आपके प्रति ईर्ष्यालु नहीं, कोई आपकी चुगली नहीं करता, मित्र भाव रखने से मन में शान्ति बनी रहती है।

## वर्तमान का सदुपयोग करें

१०९. जो कार्य कर्त्तव्य हमारे सामने है उस पर

ध्यान न देकर हम सदा बीती घटनाओं की चिन्ता करते रहते हैं। यदि मैं ऐसा न करता तो यह कष्ट न आता, यदि उसने मुझे यह सहायता दी होती तो ऐसा हो जाता, अथवा कहीं ऐसा न हो जाय, आदि मिथ्या भयों से सदा व्याकुल और दुःखी रहते हैं अर्थात् भूत और भविष्य में निवास करते हैं जब कि हमारा निवास केवल वर्तमान में ही सम्भव है और उसी को उपयोगी बनाकर हम सफल बन सकते हैं। जो बीत चुका वह तो मर गया उसकी चिन्ता क्यों करें, जो भविष्य में आने वाला है वह वर्तमान के सदुपयोग से उज्वल बन जायेगा।

११०. खुले दिल से अपनी भूल स्वीकार करें। यदि आप भूल को स्वीकार न करें तो आपकी आत्मा पर एक प्रकार का आन्तरिक भार रहता है। आत्मा तो प्रखर ज्योति की तरह है उसके सामने कालिमा कैसे टिक सकती है। यदि आप भूल को स्वीकार कर मुक्त हृदय से माफी मांग लेते हैं तो मन के गुप्त प्रदेश से कालिमा चेतना के ऊपरी स्तर पर आ जाती है, चेतना के सन्मुख आते ही मानसिक क्लेश दूर हो जाते हैं अतः भूल को स्वीकार करना आध्यात्मिक पथ पर आगे बढ़ना है।

१११. जो व्यक्ति केवल कल्पनाओं के ही महल बनाता है कार्य कुछ नहीं करता, इससे क्या लाभ? यह

सत्य है कि उस व्यक्ति में सोचने और नये-नये मनसूबे, नवीन योजनायें बनाने, बढ़ बढ़कर बातें करने के गुण हैं पर बिना कार्य को सम्पादन किये ये सब व्यर्थ हैं।

११२. जीवन एक संग्राम है। इस जीवन में वही विजयी होता है जो सीना तानकर कष्टों, प्रतिकूलताओं का मुकाबला कर सकता है। कष्टों की घनघोर घटाओं में बिजली की तरह मुस्करा सकता है। परिस्थितियों का दास न बनकर उनका स्वामी बनता है, जो मर जाना पसन्द करता है पर झुकता नहीं।

११३. जो होना है वह होकर रहेगा, यदि आने वाली दुर्घटना, दुःख भरे अवसर आने वाले ही हैं उनसे नहीं बचा जा सकता, तो उनसे मेल कर लेना ही ठीक है।

११४. जिन बातों को आप बदल नहीं सकते, जो आपके हाथ की बात नहीं है उसके विषय में चिन्ता करने से क्या लाभ ?

## अपने आप पर स्वामी बन कर रहिये

११५. आप कहेंगे हम तो स्वयं अपने स्वामी आप हैं हां, फिर आपके कथन का क्या तात्पर्य है ? यदि आप अपनी इन्द्रियों के वश में हैं, यदि मन के प्रलोभनों में बह जाते

हैं, यदि आपको विविध क्षुद्र प्रलोभन नाच नचाया करते हैं और आप इनके वश में हैं तो वास्तव में आप स्वामी नहीं, गुलाम ही हैं।

११६. इन्द्रियों की दासता ऐसी ही है जैसे कठपुतली में बँधे हुए सूक्ष्म तन्तु, जिधर को तन्तु हिले उधर को ही कठपुतली ने हाथ पांव हिलाये, स्वयं कठपुतली का कोई अस्तित्व नहीं है। उसी प्रकार इन्द्रियों के दास का हाल है।

११७. यदि इन्द्रियों को यूं ही बेलगाम जिधर चाहें छोड़ दिया जाये, तो निश्चय जानिये वे मनुष्य को ऐसे गड्ढे में ले जाकर पटकेंगी जहां से उठना असम्भव हो जावेगा।

११८. मनुष्य की वासनाएं अनन्त हैं, इच्छाओं की कोई गिनती नहीं, तृष्णाओं की संख्या उतनी ही है जितने आकाश के सितारे। एक वासना, एक इच्छा अथवा एक तृष्णा के पूर्ण होते ही दस नई इच्छाओं का जन्म हो जाता है। इस प्रकार कामनाओं और नित्य नई आवश्यकताओं का मोह-बन्धन मनुष्य को बांधे रहता है। सांसारिक भोग विलास का हरदम दास बना रहता है इसलिये अपनी इन्द्रियों की रखवाली वैसे ही करो जैसे एक कर्त्तव्यनिष्ठ सिपाही खजाने की करता है। यदि चोरों को अवसर मिलेगा तो इन्हीं दरवाजों से घुस

कर सारा खजाना खाली कर देंगे। इसलिये खबरदार! इन्द्रियों पर अपनी पूरी धाक रखो, उन्हें अपने वश में रखो, अन्यथा सारा करा कराया चौपट कर देंगी।

११९. मनुष्य शक्ति सामर्थ्य और सफलता का सिपाही है, अज्ञान एवं मोह वश होकर अपने आपको दीन-हीन शक्ति विहीन समझता है, अपनी दैवी शक्तियों को विस्मृत कर कायर का सा जीवन व्यतीत करना कितनी बड़ी मूर्खता है। जन्म लिया, अभाव और दुःखों में पलते पनपते रहे और विषादमय जीवन व्यतीत करते हुए मृत्यु को प्राप्त हो गये, ऐसा जीवन किस अर्थ, यह तो आदि पिता परमात्मा का अपमान है।

१२०. हमारा सुधार क्यों नहीं होता, हम क्यों मोह-निद्रा में पड़े रहते हैं? वास्तव में हमें अपनी त्रुटियों का, कमजोरियों का ज्ञान नहीं होता। हम अपने को निर्दोष और महात्मा मान बैठते हैं।

१२१. जो अपनी दुर्बलता का दर्शन करता है उस के लिये सच्चा पश्चाताप कर उसे दूर करने की इच्छा से सतत उद्योग आरम्भ करता है उसका आधा काम तो बन गया समझो।

१२२. ऐ मनुष्य! तू महान् है। ईश्वर के साक्षात्कार के लिये, इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये इस मानव सृष्टि में आया है। तू सफलता के लिये, पूर्ण विजय के

लिये निर्मित किया गया है। इससे तुझे कोई विचलित नहीं कर सकता। परमपिता परमात्मा की यह इच्छा कदापि नहीं है कि तू अपनी परिस्थिति के हाथ का कठपुतला ही बना रहे, अपनी मनोवृत्ति का गुलाम ही बना रहे।

१२३. ऐ अक्षय, अविनाशी आत्मा! तू तुच्छ नहीं महान् है, तू अनन्त शक्ति का पुञ्ज है, तू साक्षात् पारस है, तेरा मन कल्पवृक्ष है, वह तेरी आज्ञाओं का पालन करेगा, तू तो अमृत स्वरूप है भय और चिन्ता को पास न फटकने दे।

१२४. विश्व में सबसे अधिक महान् कार्य अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानना है।

१२५. तीव्र प्रवाह में प्रवाहित क्षुद्र तिनके की तरह बहाव में यों ही वह जाने के लिये तुम नहीं बने हो। तुम महान् पिता के महान् पुत्र हो, तुम स्वयं अपने भाग्य की रचना कर सकते हो, तुम जो बोते हो वही काटते हो। अपनी उन्नति के पर्वत पर तुम्हें स्वयम् अपनी साधना से चढ़ना है, अपनी आत्मा को तुम्हें स्वयम् ही जाग्रत करना है, जब तक तुम धैर्य और उत्साह से चलने को कटिबद्ध नहीं होओगे, तब तक बाहर की कोई शक्ति तुम्हारी सहायता नहीं करेगी।

## रुपये से क्या मिलता है और क्या नहीं मिलता

१२६. रुपये से सुन्दर स्वादिष्ट पकवान, मिठाई, बढ़िया भोजन खरीद सकते हैं पर भूख नहीं, भूख ढेर के ढेर रुपये देने पर भी बाजार में नहीं मिलेगी।

रुपये से शक्तिवर्धक अनेक पदार्थ, अनेक दवाइयां मिलेंगी पर शक्ति नहीं। शक्ति के लिये मनुष्य को परिश्रम रूपी धन व्यय करना होगा। धन से मनुष्य ऐश्वर्यशाली बन सकता है पर सच्चा आनन्द और शान्ति कदापि न मिल सकेगी। रुपये से चश्मा मिलेगा पर दृष्टि नहीं। कोमल शय्या मिलेगी पर निद्रा नहीं। रुपये से नौकर मिल सकते हैं पर सच्ची सेवा नहीं। संगी साथी अनेक इकट्ठे हो जायेंगे पर प्रेमी नहीं।

संसार में उत्तम वस्तुएँ प्रायः बिना रुपये पैसे के ही प्राप्त हुआ करती हैं।

१२७. अपराध मनुष्य के मुख पर लिखा रहता है। अग्नि को वस्त्र में छिपाकर रखिये, तो वह अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती है, धीरे धीरे समीपस्थ वस्त्र अन्दर से जल जायेंगे। इस अग्नि का धुआं चाहे उस समय दिखाई न दे, किन्तु अदृश्य रूप में वह सदा वर्तमान है। पाप बुराई ऐसी ही अग्नि है जो अन्दर ही अन्दर मनुष्य में विकार उत्पन्न करती है। अपराधी चाहे यह

समझता रहे कि वह अपराध को छिपा सकता है परन्तु वास्तव में पाप छिपता नहीं। मनुष्य का अपराधी मन उसे सदा व्यग्र, अशान्त, चिन्तित रखता है। पाप, बुराई पानी की तरह है, यह नीचे की ओर खींचती है, इसी प्रकार दुर्गुण मनुष्य को नीचे की ओर ले जाता है।

१२८. विचारपूर्वक देखें तो दोष से तो हम सभी परिपूर्ण हैं किन्तु दोषमुक्त होना हम सबका धर्म है।

१२९. मनुष्य में एक कमजोरी है वह यह कि वह अपनी भूलों और गलतियों की ओर तो ध्यान देता नहीं, दूसरों का दोष देखता है। दूसरे के दोष निकालना एक ऐसी कमजोरी है जिसके द्वारा मनुष्य अपनी कमजोरियों पर पर्दा डाले रखना चाहता है। यदि हमसे कोई भूल हो जाती है तो भी हम उसका उत्तरदायित्व दूसरों पर ही डाले रखना चाहते हैं, कभी-कभी अपनी भूलों को ही उपयोगी या आवश्यक सिद्ध करने का दुःसाहस करते हैं, यह रूप भी बड़ा घृणित है।

१३०. विचारवान वे हैं जो दूसरों की भूल न देखकर अपने दोष और दुर्गुणों को निकालने का प्रयत्न करते हैं। थोड़ा सा पाप, जरा सा झूठ, तनिक सा वासनामय चिन्तन तक को भी मन में न आने दीजिये। एक-एक बूंद से पाप का घड़ा भर जाता है, थोड़ी-थोड़ी पाप की बात सोचने से ही मनुष्य कुछ समय में पाप के

पंक में डूब जाता है इसलिये बहुत सावधान रहिये। अपने भीतरी दोषों को ढूंढिये और उन्हें नष्ट कर बाहर निकालने में जुट जाइये। दुर्गुण रूपी काँटों को हटाकर उनके स्थान पर अपने हृदय उद्यान में सद्गुणों के पुष्पमय पौधे लगाइये।

१३१. हम क्षुब्ध, चंचल, परेशान इसी कारण हैं कि सर्वव्यापी परमात्मा को भूल गये हैं। सच्चे सुख, शान्ति और परमानन्द के इस अक्षय भण्डार को छोड़ दिन रात कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगा रहे हैं, यह कभी विचार ही नहीं करते कि हम इस संसार में क्यों आये, हमारा क्या कर्तव्य है।

१३२. हमने अपनी आत्मा के चारों ओर व्यर्थ की आवश्यकताओं की ऐसी मोटी दीवारें खड़ी करली हैं कि हमें क्षण भर भी चैन नहीं, शान्ति नहीं। जो जितनी आवश्यकताओं की वृद्धि करता है वह उतना ही दुःखी रहता है। वास्तव में सुख कहीं मोल नहीं बिकता, वह किसी की खुशामद, सिफारिश या प्रेरणा से प्राप्त नहीं होता। वह तो हमारी आत्मा के भीतर ही है, आत्मा से बाहर उसकी कहीं भी सत्ता नहीं है। जब हमारा अन्तःकरण शुद्ध सात्विक हो जाता है, इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं, मन एकाग्र होने लगता है, हमारी समस्त क्रियाएँ मुमुक्षा के लिये होती हैं, तब हमें सच्चे सुख के

दर्शन होने लगते हैं, तभी हम आत्मा में छिपे सत्य सुख की महान् निधि को पहचान पाते हैं।

१३३. संसारी जीव आत्मा परमात्मा को भूल रहे हैं और इस से भिन्न किसी अन्य पदार्थ में सुख की कल्पना किये बैठे हैं, उसी की प्राप्ति में रात दिन हैरान परेशान मारे मारे फिर रहे हैं। सांसारिक सुख भोगते-भोगते ही भाग्यवश मोक्ष प्राप्त हो जायगा, ऐसी धारणा रखने वाले मूढ़मति अन्त तक कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाते। वाह्य विषयों में सुख है ही नहीं, केवल मृगतृष्णा मात्र है।

१३४. सुख की खोज अन्तर में होनी चाहिये, हमें यह मालूम करने की चेष्टा करनी चाहिये कि वह सुख हमारे भीतर ही कहां छिपा पड़ा है। कैसी हमारी अज्ञानता की मिट्टी उसके ऊपर पड़ी हुई है और कैसे उस मिट्टी को हटाकर हमें उसकी प्राप्ति होगी।

१३५. सुख का केन्द्र जितना ही वाह्य वस्तुओं में माना जायगा, उतना ही दुःख क्लेश होगा। वाह्य वस्तुएं तो सतत परिवर्तन शील हैं, इस परिवर्तन के आते ही सुख-स्वप्न नष्ट हो जायेगा। वास्तविक सुखी वही है जिसने अपने सुख का केन्द्र वाह्य पदार्थों में नहीं, आन्तरिक तत्व में रक्खा है।

१३६. सुख का निवास स्थान अन्दर है, सुखों की

जड़ तुम्हारे अन्दर है, अपने जीवन पर दृष्टि डालो और देखो कि मोह के किन-किन कच्चे सम्बन्धों ने तुमको जकड़ रक्खा है, किन-किन वस्तुओं में तुम अपने को बाँधे हुए हो।

१३७. आपको यह अनुभव करना चाहिये कि आप जितना जड़ जगत् के पदार्थों में आसक्त हो, उतना ही अधिक चिन्तित रहते हो। इसलिये एक-एक करके कृत्रिम और सच्ची आवश्यकताओं में विवेक कीजिये, और धीरे-धीरे बाहर की सुखदाई चीजों को त्याग कर अन्तर्मुख होने का अभ्यास कीजिये। आप की स्वतन्त्र आत्मा को कोई बद्ध नहीं कर सकता, आप अपने जीवन के सम्राट् हैं।

१३८. मनो-विकारों तथा उद्वेग के वश में होकर उद्विग्न, चलायमान, पीड़ित और क्रुद्ध होजाना साधारण बात है किन्तु जब मनो-विकार अपना जोर दिखा रहे हों, तब उन्हें मजबूती से अपने वश में रखना, उनसे विचलित न होना, यह आत्मोन्नत व्यक्ति ही कर सकता है।

१३९. स्मरण रक्खो हम जो कुछ पढ़ते हैं उससे नहीं, परन्तु जो पढ़कर स्मरण रखते हैं और उन आदेशों पर अमल करते हैं उनसे उन्नत होते हैं।

१४०. यदि आप जीवन के उच्चतम लाभ को प्राप्त करना चाहते हैं तो वह बाह्य जगत् में नहीं अन्तर्जगत् में प्राप्त

होगा। स्वर्ग मुक्ति, तथा परम पद की कुञ्जी आप के हाथ में है, आप चाहें तो आत्म-निर्माण द्वारा इन तत्त्वों को प्राप्त कर सकते हैं।

१४१. जो व्यक्ति अपनी वासनाओं का दास है वह नरक की यातनाएँ भोग रहा है। संसार की वस्तुओं से मनुष्य को सुख प्राप्त नहीं होता, थोड़ी देर के बाद पुनः दूसरी वस्तु की ओर मन तेजी से भागता है, एक इच्छा की तृप्ति हजार नई इच्छाओं को जन्म देती है, जो व्यक्ति भोगमार्ग को तिलाँजलि देता है वह संसार की सब से बड़ी खाई को पार करता है।

१४२. वेद, शास्त्र, सन्त महात्माओं की शिक्षा एक सुदृढ़ लाठी के समान है जो गिरते पड़ते हुए व्यक्तियों को सहारा देकर ऊँचा उठाती रहती है और बुरे अवसरों पर गिरने से बचाती है।

१४३. आनन्द कोई ऐसा तत्व नहीं, जिसे आप धन देकर बाजार से खरीद सकें, अथवा वाटिका के किसी हरित पुष्पित खेत से काटकर ला सकें, यह वातावरण में नहीं उड़ता फिरता, न वृक्षों की झूमती हुई लतिकाओं पर ही लगता है। यह तो अपने भीतर की निधि है जो अन्तर्मुख होने पर मनुष्य अनुभव कर सकता है।

१४४. आध्यात्मिक सुख मानसिक है, संकट में

विपद में कष्ट और कठोर प्रतिघात में रह कर भी आत्मिक दृष्टिकोण वाले व्यक्ति की समता नष्ट नहीं होती। वह संसार की नाशवान वस्तुओं से संपर्क अधिक नहीं बढ़ाता, साँसारिक कष्टों को स्वप्नवत् समझता है। वह तत्वदर्शी जानता है कि मैं अविनाशी, अच्छेद्य, अभेद्य आत्मा हूँ। प्रिय अप्रिय झोंके मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

१४५. वेद भगवान् आदेश करते हैं—हे मनुष्यो! असत्य की ओर नहीं सत्य की ओर ही चलो। झूठ, मिथ्याचार, स्वार्थ के अन्धकार में मत भटको, सत्य के प्रकाश में आओ। अपनी वास्तविकता का निरीक्षण करो। तुच्छ विषयवासना, इन्द्रिय लिप्सा और तृष्णा की ओस चाटने से तृप्ति नहीं मिल सकेगी, दुःख की ज्वाला जलती रहेगी। उस जलन में झुलसते हुए हर घड़ी रोना, पछताना और सिर धुनना होगा। भवसागर में अनेक दुःखों का भण्डार भरा हुआ दिखाई देता है, उस का कारण यह है कि इस सत्य की शीतल सरिता का किनारा छोड़कर असत्य के रेगिस्तान में जा पहुँचे हैं और उस तवे-से जलती हुई बालू में पाँव डालने से कष्ट होता है। अतः वेद आपको असत्य से हटाकर सत्य की ओर चलने का आदेश देते हैं। पाठको! अन्धकार की ओर नहीं प्रकाश की ओर चलो,' भविष्य सुखदाई बन

जांयगा।

१४६. जो पुरुष अपनी निन्दा सह लेता है उसने मानो संसार पर विजय प्राप्त करली। ✓

१४७. जो उभरे हुए क्रोध को घोड़े के समान वश में कर लेता है वह सच्चा सारथी है, वागडोर पकड़ने वाला नहीं। जो क्रोध को क्षमा में दवा लेता है वह श्रेष्ठ पुरुष है। ✓

१४८. मूर्ख वच्चे तो आपस में वैर निरोध करते ही हैं, समझदार को ऐसा नहीं करना चाहिये।

१४९. मर्म वेधी और कड़वी वात मुँह से नहीं निकालनी चाहिये। जिस से किसी को कष्ट हो, ऐसी वात तो मूर्ख लोग कहते हैं। जो अपनी कड़वी तीखी वातों के काँटों से लोगों को सताता है उसको देखना भी वुरा है क्योंकि वह अपनी वाणी के रूप में एक पिशाचिनी को ढो रहा है।

१५०. वाणी से भी वाण वृष्टि होती है जिस पर उसकी वौछारें पड़ती हैं वह दिन रात दुःखी रहता है इसलिये ऐसी वाणी का प्रयोग कभी नहीं करना चाहिये। सभी प्राणियों के प्रति दया तथा मैत्री का भाव हो।

१५१. चिकनी चुपड़ी वातें कहने वालों की तो कमी नहीं है परन्तु ऐसे पुरुष वहुत दुर्लभ हैं जो अप्रिय न कहें किन्तु हितकारी वात कहें और सुनें।

१५२. तृष्णा ही सर्व पापों का मूल है, अविवेक की जननी है, अधर्म से पूर्ण और भयंकर है, मूर्ख इसका त्याग नहीं कर सकते। बूढ़े होने पर भी यह बूढ़ी नहीं होती, यह शरीर के साथ जाने वाला रोग है। इसका त्याग करने से ही वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है।

१५३. हर्ष में फूल न उठें, अपने मन के विपरीत कोई बात हो जावे तो दुःख न मानें।

१५४. जब पुरुष अपनी इन्द्रियों को वश में करता है उस समय मानो वह तप करता है।

१५५. संसार में कष्ट उठाये बिना किसी को उच्च कोटि का सुख नहीं मिलता।

१५६. इन्द्रियों और मन को वश में रखना, दूसरों के दोष न देखना, किसी भी जीव को मन वचन कर्म से दुःख न पहुँचाना, यह सद्गुण मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं।

१५७. जो इन्द्रियों के अधीन हो गया है उसकी आपत्तियाँ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति बढ़ती हैं।

१५८. जो अपने प्रतिकूल जान पड़े, उसे दूसरों के प्रति न करें, थोड़े में धर्म का यही स्वरूप है।

१५९. कोई अजितेन्द्रिय पुरुष भगवान् को प्राप्त नहीं कर सकता, इन्द्रिय दमन के सिवाय उन्हें पाने का और कोई मार्ग नहीं है।

१६०. शोक और भय मूर्खों पर ही अपना प्रभाव डालते हैं बुद्धिमानों पर नहीं। मनुष्य जब किसी पदार्थ में ममत्व कर बैठता है तो वही उसके दुःख का कारण बन जाता है।

१६१. यह भलीभांति ध्यान में रखना चाहिये कि मृत्यु किसी के कहने से एक क्षणभर भी नहीं रुकती। यह जानकर अपने कल्याण के साधन में ढील नहीं करनी चाहिये। मनुष्य की कामनाएँ पूर्ण होने भी नहीं पातीं कि मौत उसे आ दबोच लेती है इसलिये जो काम कल्याण-कारक हो उसे तुरन्त कर लेना चाहिये। क्योंकि मृत्यु तो काम पूरा न होने पर भी प्राणियों को खींच ही ले जाती है इसलिये जो काम कल करना हो उसे आज करो, और जो दोपहर करना है उसे प्रातःकाल ही कर लो।

१६२. यह कौन जानता है कि आज किस की मृत्यु हो जायेगी। मनुष्य सोचता है कि यह काम तो पूरा हो गया, यह अभी करना है और यह अधूरा है किन्तु ऐसी स्थिति में ही मौत उसे इस प्रकार उठा ले जाती है जैसे व्याघ्री अपने सोते हुए शिकार को। इसलिये सावधान रहो और शीघ्र अपना काम बना लो।

१६३. संसार में ज्ञान के समान कोई नेत्र नहीं, राग के समान कोई दुःख नहीं और त्याग के समान कोई सुख नहीं।

१६४. जब शारीरिक या मानसिक दुःख आ पड़े, तब उसके लिये मनुष्य को चिन्तित नहीं होना चाहिये, दुःख का चिन्तन न करना ही उसकी औषधि है, चिन्तन करने से तो वह सामने आता है और अधिकाधिक बढ़ता है अतः मानसिक दुःख को विचार से और शारीरिक व्याधि को औषधि से दूर करे। बच्चों के समान शोक नहीं करना चाहिये।

१६५. यह बात ध्यान में रक्खो कि दुःख की प्राप्ति तो शरीर के ग्रहण मात्र से निश्चित है परन्तु इसकी वृद्धि शरीर में अभिमान करने से होती है।

१६६. अच्छे पुरुष रस आस्वादन की ओर दृष्टि न रखकर ही भोजन करते हैं किन्तु जो अपनी रसना का विषय समझ कर स्वादु-अस्वादु का विचार रखते हुये भोजन करते हैं उन्हें बन्धन में बँधे हुये समझना चाहिये।

१६७. बोलने से न बोलना ही अच्छा है किन्तु यदि बोलना ही पड़े तो सत्य बोलना वाणी की दूसरी विशेषता है, धर्मयुक्त बात कहनी तीसरी और प्रिय बोलना चौथी।

१६८. बुद्धिहीन मनुष्य ही अप्रिय वस्तु की प्राप्ति और प्रिय वस्तु के वियोग होने पर मन ही मन दुःखी होता है। जो वस्तु नष्ट हो गई उसके गुणों का स्मरण

नहीं करना चाहिये, दुःख दूर करने की सबसे बड़ी दवा यही है कि उसका चिन्तन न किया जावे। आदरपूर्वक चिन्तन करने से उसमें आसक्ति बनी रहती है। जो मनुष्य भूत काल में मरे हुये व्यक्ति अथवा नष्ट हुई वस्तु के लिये निरन्तर शोक करता रहता है वह एक दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त होता है।

१६९. दुःख आ पड़ने पर बालकों की तरह रोना उचित नहीं है।

१७०. देह रूपी घर को आत्मा समझना पाप है।

१७१. जिन मनुष्यों ने ईश्वर को ढूँढा है उन्होंने उसे अपने ही भीतर अनुभव किया है।

१७२. आध्यात्मिक जीवन ही सच्चा जीवन है, भौतिक जीवन तो जीवन शब्द के अर्थ को दूषित करना है, दूसरे शब्दों में उसे मृत्यु कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं।

१७३. संसारी रीति-रिवाजों के आधीन होकर अपनी वास्तविक उन्नति को रोक देना आत्मा को धब्बा लगाना, अपने को नीचे गिराना है और मनुष्य देहरूपी चिन्तामणि से काक उड़ाने का काम लेना है।

१७४. वह रीति-रिवाज जो तुम्हारे कुढ़ने और दुःखी होने का कारण हैं नाजायज़ हैं, उनके अनुसार

चलना तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं है। शेर बनो और ऐसे जूए को बे खटके अपने कन्धे से उतार कर फेंक दो। इस बात की परवाह मत करो कि बाप दादा से यह रिवाज चला आ रहा है।

१७५. नाना प्रकार के विघ्न बाधाओं में पूर्ण इस जगत् में जो मनुष्य ईश्वर प्राप्ति के लिये साधन करता है वह वास्तव में बड़ा ही भाग्यशाली है।

✓ १७६. किसी की सेवा करते हुए अपने अन्दर सेवकपने का अभिमान नहीं रखना चाहिये। सेवा को परोपकार न समझ कर उसे अपना कर्त्तव्य समझना, सेवा करके किसी पर अहसान न जतलाना, सेवा का कुछ भी बदला न चाहना, मान प्रतिष्ठा की इच्छा का विष समान त्याग करना, परमार्थ में जो सहायक न हो उस पुस्तक को न पढ़ना, मेलों आदि की भीड़-भाड़ में कम शामिल होना। यह सब श्रेष्ठ व्यवहार हैं इनमें जो जितनी उन्नति करेगा वह उतना ही परमार्थ की साधना में आगे बढ़ेगा।

१७७. साधक को यह निश्चय रखना चाहिये कि परमात्मा मेरा सबसे सच्चा मित्र है, सदा का साथी है, मुझे तो बस उसी की शरण होकर उसी का भजन ध्यान, उपासना करनी चाहिये, फिर सारा बोझ (भार) उसी पर है। जो साधक परम विश्वास के साथ ऐसा कर लेता है वह

निस्सन्देह सारे विघ्नों को लाँघकर शांति को प्राप्त कर लेता है।

१७८. पढ़ पशु नहीं होना चाहिये।

१७९. दिखलावे के लिये कुछ करना बहरूपियापन है, मानने से करने का आसन ऊँचा है। विचार से आचार का आसन ऊँचा है। उस ज्ञान का क्या लाभ, जिसका आचार से मेल नहीं है, यदि ज्ञान के अनुसार आचार नहीं है तो वह ज्ञान अज्ञान है।

१८०. सारे शस्त्र पढ़ लिये और आत्मा परमात्मा को न जाना, और न ही जानने का यत्न किया, तो उस पढ़ने से क्या लाभ ? जैसे किसी मनुष्य के हाथ में लैम्प हो और वह आँखें बन्द करके चले, तो क्या लैम्प उसे गड्ढे में गिरने से बचा सकता है ? इसी प्रकार शास्त्र की बात है।

१८१. सारा जगत् परमात्मा का है, वही सबको उत्पन्न करने वाला है, वही हाकिम वही स्वामी है परन्तु भ्रम से हमने परमात्मा के पदार्थों को अपना मान लिया है इसलिये हम दुःखी होते रहते हैं। यदि हम अपनी इस भूल को मिटाकर यह समझ लें कि जो कुछ है वह परमात्मा का है तब वह परमात्मा हमें ईमानदार समझ कर हम पर प्रसन्न होता है और हम उसके कृपापात्र होते हैं।

१८२. जो कुछ है सब परमात्मा का है इस बुद्धि के आ जाने पर ममता चली जती है, मैं और मेरा ही तो बन्धन है, ईश्वर का शरणागत भक्त "मैं, मेरे" के बन्धन से छूट कर ईश्वर से कहता है कि बस केवल एक तू है और सब कुछ तेरा है। ऐसे भक्त को फिर किसी भी बात की कोई चिन्ता नहीं रहती। शरण ग्रहण कर लेने पर भी यदि शरणागत को चिन्ता करनी पड़ी, तो वह शरण ही कैसी? जो जिसकी शरण होता है उसकी चिन्ता उसके स्वामी को होती है।

१८३. मनुष्य को जहां तक हो सके अपना काम स्वयं करना चाहिये, किसी का दास न हो।

१८४. मान बड़ाई अथवा प्रतिष्ठा का चाहना और उनके प्राप्त होने पर स्वीकार करते रहना, यह दाद की खाज की तरह का रोग है जो आरम्भ में सुखदाई मालूम होने पर अन्त में दुःखदाई होता है।

१८५. इस मार्ग पर चलने वाले पुरुषों को अपने मन में खूब उत्साह रखना चाहिये कि सब विघ्नों का नाश करने वाले, साधन में सदा सहायता देने वाले भगवान् हमारे पीछे रहकर सदा हमारी रक्षा करते हैं। युद्ध भूमि में लड़ाई के लिये तय्यार योद्धा के मन में इस विचार से महान् उत्साह बना रहता है कि मेरे पीछे बहुत बड़ी सैना लिये हुये सैनापति मौजूद है। भक्त को

तो उससे भी अधिक उत्साह होना चाहिये । क्योंकि उसके पीछे अनन्त शक्तिशाली भगवान् हैं । शक्तिशाली सैना का सहारा पाकर जब निर्बल भी बलवान बन जाता है, कायर भी शूरवीर जैसा कार्य कर दिखाता है फिर जिसके भगवान् सहायक हों, उसे तो सदा निर्भय रह कर आगे ही आगे बढ़ना चाहिये । जब वह पद-पद पर हमें बचाने को तय्यार हैं तब भय कैसा ?

१८६. जैसे छोटा बालक माता की गोदी में आते ही अपने को निर्भय और निश्चिन्त मानता है इसी प्रकार हमें भी अपने को परमपिता परमात्मा की गोद में स्थित समझ कर निर्भय और निश्चिन्त रहना चाहिये । भगवान् तो बल आदि में सभी तरह से अधिक हैं इसलिये सब प्रकार से भय शोकादि को त्याग कर बड़े उत्साह और उमंग के साथ एक शूरवीर की भांति अपने उद्देश्य पर बड़ी लग्न से आगे बढ़ना चाहिये । और यह सदा निश्चय रखना चाहिये कि हम भगवान् की सहायता से अवश्य सफल मनोरथ होंगे ।

१८७. यह संसार के सभी भोग शहद लिपटे हुए विष के समान हैं, ये केवल देखने मात्र के सुन्दर और इनमें केवल मानने मात्र का ही सुख है, यह केवल मृगतृष्णा है इसमें कहीं भी आनन्द का लेश नहीं है इसलिये इनसे प्रेम हटाकर आनन्दमय परमात्मा से प्रेम करना चाहिये ।

१८८. परमात्मा से प्रेम करना साधक के लिये सुगम भी है, रुपये पैसे के प्रेम से इसमें कम श्रम है क्योंकि रुपये से केवल हम प्रेम करते हैं, रुपया जड़ होने से हम से प्रेम नहीं कर सकता। परन्तु भगवान् तो जड़ नहीं हैं परम प्रेमी हैं; हम जितना प्रेम करते हैं उससे कहीं अधिक वह हम से करते हैं इसलिये इसमें शीघ्र सफलता होती है।

१८९. बहुत ही दुर्लभ मनुष्य देह प्रभु कृपा से प्राप्त हुई है, यह संसार समुद्र से पार जाने के लिये दृढ़ नौका है, गुरु रूपी कर्णधार है, भगवान् इसके अनुकूल वायु हैं इस प्रकार होने पर भी जो संसार समुद्र से पार होने का प्रयत्न नहीं करता, वह आत्म-हत्यारा है।

१९०. धन प्राप्त होना अथवा नष्ट हो जाना, रोगी होना अथवा स्वस्थ हो जाना, किसी का संयोग अथवा वियोग होना, आदि इन सब बातों में तो प्रारब्ध कारण है परन्तु चिन्ता शोक आदि में तो अज्ञान ही मुख्य कारण है। अज्ञान का नाश होने पर शोक मोह नहीं रहते इसलिये चिन्ता न करना, शोक न करना, दुःखी न होना यह मनुष्य के हाथ की बात है इसमें प्रारब्ध कारण नहीं है।

१९१. बड़ी सुन्दर रसोई बनी है, बहुत ही स्वादिष्ट भोजन तय्यार है, बड़े ही चाव से हम खाने को बैठे, एक

ही ग्रास हाथ में लिया था कि एक मित्र ने चुपके से आकर कान में कह दिया कि इस भोजन में विष है खाना मत। बस इतना सुनते ही हम उस ग्रास को उसी क्षण फेंक देते हैं, विष का ज्ञान हो जाने पर पदार्थ कितना ही मधुर, स्वादिष्ट क्यों न हो हम फिर उसे नहीं खा सकते। क्योंकि मित्र की बात पर हमें पूरा विश्वास है। बस यही हाल संसार के भोगों का है, हम यदि शास्त्र, भगवान् तथा सन्त महात्माओं की वाणी पर विश्वास कर लें तो फिर इन भोगों में कभी मन न लगावें। परन्तु वास्तव में हमें न शास्त्र पर, न भगवान् पर पूरा विश्वास है, पढ़ते हैं सुनते हैं पर "परनाला वहीं पड़ेगा" वाली कहावत ठीक है।

१६२. उन्नति इच्छुक को दो बातों को भूल जाना चाहिये, १-दूसरों के प्रति किया हुआ उपकार, और २-दूसरों के द्वारा किया हुआ अपकार, इन का संस्कार रूप से भी मन में रहना हानिकर है।

१६३. दो बातें कभी भुलानी नहीं चाहिये—(१) अपने प्रति दूसरे का किया उपकार, (२) अपने द्वारा किया हुआ दूसरे का अपकार। इन बातों को जीवन भर याद रखना चाहिये। यदि हम ने किसी का उपकार करके वाणी से तो प्रकट न किया, परन्तु मन में संस्कार रूप से भी उसे रहने दिया, तो भी निष्काम भाव के

लिये कलंकरूप ही है। इसी प्रकार दूसरे के द्वारा किये हुए अपने अपकार को भी यदि हृदय में से नहीं हटाया, तो मन में इस बात की इच्छा बनी रहेगी कि उस अपकार करने वाले को किसी प्रकार दण्ड मिल जाय तो अच्छा है।

१६४. व्यर्थ की गप्पों को बन्द किया जावे, दूसरों की घरेलू और गुप्त बातों के विषय में बातचीत करना, और बिना किसी प्रयोजन के व्यर्थ बातें करने का नाम गप्प है; ऐसी व्यर्थ बातें बिना नियम के मनुष्य ही किया करते हैं, धर्मात्मा और सदाचारी मनुष्य अपनी जबान को अपने वश में रक्खेगा, इधर उधर की व्यर्थ बातें नहीं करेगा।

१६५. रीति रिवाजों की परवाह मत करो, लकीर के फकीर मत बने रहो, दूसरे क्या करते हैं इसकी भी कुछ चिन्ता न करो। तुम केवल लोगों के बीच में अकेले और सीधे खड़े होना सीखो। अपनी राय पर विश्वास करो। ऐसे मनुष्य भी हैं जो तुमसे यह कहेंगे कि तुम मूर्ख हो, तुम्हारे विचार मिथ्या हैं, तुम्हारी बुद्धि में भ्रम है, तुम में विवेक नहीं है। तुम उन लोगों के कहने की कोई परवाह न करो, कम से कम इतना तो जरूरी है कि तुम्हारी अन्तर आत्मा तुम्हारी है इसका अनुकरण करना मनुष्य होने के नाते तुम्हारा कर्त्तव्य है दूसरे

मनुष्य की अन्तर आत्मा के अनुकूल प्रवृत्ति करना उसका गुलाम बनना है।

१६६. तुम्हें अनेक बार परास्त होना पड़ेगा, तुम्हें कष्टों को सहन करना होगा। परन्तु तुम अपने सिद्धान्त पर अटल हुए आगे बढ़े चलो और इस बात का विश्वास रक्खो कि पूर्ण और निश्चित विजय आगे चल कर ही है। किसी एक साधन को दृढ़ता से पकड़ लो फिर चाहे कुछ भी हो, परन्तु इससे विचलित न होओ। जब तुम ऐसे हो जाओगे तब तुम अवश्य सफलता प्राप्त करोगे।

१६७. मनुष्य को स्मरण रखना चाहिये कि जीवन का काल बहुत थोड़ा है, इसको व्यर्थ दूसरों के दोष ढूँढने में नहीं खोना चाहिये, दुनियां के पाप और दुःख दूसरों के दोष ढूँढने और उनसे झगड़ा करने से दूर नहीं हो सकते।

१६८. बुराई पर सन्तोष कर लेना, अर्थात् अपने दुर्गुणों और त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न न करना अपनी पराजय को स्वीकार कर लेना है। जो मनुष्य अपनी भूलों और त्रुटियों को प्रकट होते नहीं देख सकता, किन्तु उन्हें छिपाना चाहता है वह कल्याणमार्ग का अनुगामी नहीं हो सकता। जो मनुष्य अपनी नीच प्रकृति का निर्भय होकर सामना नहीं कर सकता, वह

त्याग के ऊँचे शिखर पर नहीं चढ़ सकता।

१६६. प्रत्येक मनुष्य को उचित है कि वह अपना निश्चित उद्देश्य बना ले, और उसकी पूर्ति में सदा उद्योग करता रहे, और उद्देश्य को अपना परम कर्त्तव्य समझे और इसकी प्राप्ति में खूब प्रयत्न करे, यहाँ तक कि अपने जीवन को भी इसके निमित्त अर्पण कर दे। हिम्मत के आगे कठिन से कठिन कार्य भी सुगम हो जाता है।

२००. एक दिन अपना प्रतिदिन का अभ्यास न करने से तो अधिक हानि नहीं होगी, परन्तु दूसरे दिन उसका मन पर जो प्रभाव पड़ता है वह सचमुच भयंकर होता है, अरुचि और उत्साह की कमी पूरी होनी कठिन हो जाती है।

२०१. केवल वस्तुओं का त्याग ही सच्चा त्याग नहीं कहला सकता, किन्तु वस्तुओं की इच्छा का त्याग ही वास्तविक त्याग है, मानसिक शांति को नष्ट करने वाला बाह्य पदार्थ नहीं है बल्कि अपने मन में इन पदार्थों के प्रति जो इच्छा उत्पन्न होती है वही सुख और शान्ति की चुराने वाली है, ज्यों-ज्यों इच्छाओं को बुद्धिपूर्वक छोड़ा जाता है त्यों-त्यों वह सुख का कारण होता जाता है।

२०२. जो मनुष्य जितना दूरदर्शी है वह उतना

ही बुद्धिमान् समझा जाता है।

२०३. आश्चर्य का विषय है कि प्रायः यहां के सुख आराम के लिये इतने प्रयास करने वाले मनुष्य अपने परलोक के विषय में जरा भी दूरदर्शी बनने का प्रयत्न नहीं करते, धन सम्पत्ति को जोड़ना, बड़े-बड़े रिश्तेदारों से सम्बन्ध स्थापित करना, बड़े-बड़े मकान बनाना इत्यादि सम्पूर्ण व्योपारों को मनुष्य जितना दूसरों के आराम के लिये करता है उतना अपने लिये नहीं। अधिक से अधिक इन सबका उपयोग वह अपने जीवन के अन्त समय तक कर सकता है, जीवन को आध घड़ी बढ़ाने का उसे अधिकार ही नहीं है, इसकी सारी बुद्धिमानी और प्रयास के फलों का आस्वादन दूसरे भले ही करें, परन्तु वह बेचारा मरने के साथ ही इन सब संसारी आनन्दों से सर्वथा वंचित हो जाता है।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह प्रत्येक व्यक्ति का प्रतिदिन का अनुभव है। लोग देखते हैं कि मनुष्य की सारी लीलाओं का अन्त मृत्यु एक क्षण में कर देती है, यह सब देखते हुए भी मनुष्यों की दृष्टि अपने भविष्य के विषय में इतनी संकुचित रहती है कि वह अपने जीवन के परे कुछ देख ही नहीं सकता।

२०४. दिन रात के चौबीसों घन्टों में एक निमेष-मात्र को भी अपने दीर्घ भविष्य सम्बन्धी विचारों में

खर्च करने की उसे फ़ुरसत ही नहीं मिलती। बनजारों के शक्कर लदे हुए बैलों से भी उन लोगों की दशा खराब है, मनुष्य की सारी क्रियाओं का सार भाग दूसरों के लिये और निस्सार भाग अपने लिये रहता है। मृत्यु के परे क्या है, इस प्रश्न की ओर तो मनुष्य का ध्यान जाता ही नहीं। और यदि कभी श्मशान भूमि में शव-संस्कार के लिये जाने पर उस ओर चित्त चला भी जाय, तो श्मशान से बाहर आते ही वह फिर झट लौट पड़ता है, प्रश्न के महत्त्व का विचार करके सच्चे दिल से इस विषय में अनुसन्धान करना तो लाखों मनुष्यों में केवल दो चार ही करते होंगे। और इस प्रयत्न में सफलता प्राप्त कर लेना तो किसी विरले का ही काम है। जो मनुष्य इस विषय में विचार करते हैं उन्हें अपने कर्त्तव्य से विचलित करने के लिये पहले तो मनुष्य जाति ही जी-जान से कोशिश करती है, कोई कहते हैं कि यह मनुष्य पागल है, कोई इसको मूर्ख और कोई आलसी, कोई दम्भी कहता है यदि इन निराशापूर्ण हृदय वेधी शब्दों से किसी दृढ़ प्रतिज्ञ महात्मा ने छुटकारा भी पाया तो अपने ही चित्त की वृत्ति इस मार्ग में नाना प्रकार की बाधाओं को उपस्थित करती है, शंका और अविश्वास का सारा झुण्ड इकट्ठा होकर मनुष्य को व्याकुल कर देता है, ऐसे समय में यह विदित होता है कि किसी अमूल्य निधि

पर अधिकार प्राप्त करने के लिये मनुष्य पर उस भण्डार के रक्षक रुद्र रूप धारण करके शस्त्र सहित टूट पड़े हैं। और सचमुच बात भी यही है मनुष्य जब मृत्यु के परे देख सकने की शक्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तो उस समय उसको बन्द अवस्था में रखने वाली सारी मानसिक वृत्तियां घेर कर उसके मार्ग में बाधा डालना चाहतीं हैं, धैर्य की पराकाष्ठा की परीक्षा का समय भी वही है।

२०५. यह स्मरण रक्खें कि पहले पहल कल्याण मार्ग तुम्हें कंकरीला और बञ्जर प्रतीत होगा, क्योंकि सचाई सदा ऐसी ही दिखाई देती है, यह केवल मोह माया ही है जो चमकीली और भड़कीली होती है।

२०६. तुम उसी समय तक दूसरों के दास हो, जब तक तुम स्वयं अपने दास बने हुए हो, तुम अपनी इन्द्रियों को अपने वश में करलो, फिर तुम्हारी सारी बुरी अवस्थाएँ जाती रहेंगी और तुम्हारी प्रत्येक कठिनाई दूर हो जावेगी।

२०७. जो मनुष्य दृढ़ता के साथ आत्म-समर्पण और इन्द्रिय निग्रह के मार्ग पर कदम रखता है और विश्वास रूपी लाठी के सहारे चलता है उसे निश्चय ही विजय और सफलता मिलेगी और स्थाई और अपरिमित सुख की प्राप्ति होगी।

२०८. भोजन के वास्तविक उद्देश्य को न समझ कर स्वाद वश भूख से अधिक भोजन कर लेना, उन्नति के इच्छुक को इस आदत को छोड़ना चाहिये।

२०९. क्या कोई मनुष्य अपने शरीर और इन्द्रियों की गुलामी को दूर किये बिना अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है! कदापि नहीं। जो मनुष्य इस मार्ग को बहुत कठिन बताता है और कहता है कि मैं बिना परिश्रम के ईश्वर को चाहता हूँ, बिना उद्योग के मोक्ष चाहता हूँ, उसका मन कभी शान्त न होगा, न उसे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होगी।

२१०. अरे प्रभु प्रेमियो! अपने मन को पूर्णतया तय्यार करो। सावधान दृढ़ चित्त और विचारशील बनो, साधन में श्रद्धा और विश्वास रक्खो, तुम्हारी मुक्ति तुम्हारे समीप है केवल तुम्हारी तय्यारी की जरूरत है। तुम्हें यदि दस बार, सौ बार, हजार बार भी असफलता हो, तो भी अपने मार्ग से कभी विचलित न होओ, एक बार भी यदि सत्य-मार्ग, कल्याण-मार्ग में लग जाओगे और उस पर जमे रहोगे, तो अवश्य सफलता होगी। पहले मेहनत करनी पड़ती है पीछे आराम मिलता है। अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लो बस उन्नति का मार्ग मिल जायेगा।

२११. ज्ञानी और अज्ञानी में इतना ही अन्तर

रहता है कि अज्ञानी ईंट का जवाब पत्थर से देता है, पर ज्ञानी बुराई के बदले भलाई करता है।

२१२. मन को सदैव शान्त रखना चाहिये, तुम्हारे चारों ओर कितना ही विषाद हो और कितने ही क्लेश-जन्य कारण हों, परन्तु उस दशा में भी तुम्हारे मन में अशान्ति न होनी चाहिये।

२१३. अरे कषाय और दुरवासनाओ के वशीभूत हुई हुई आत्माओ और चिन्ता में पड़े हुए भ्राताओ! तुम चाहे कहीं हो और चाहे किसी अवस्था में हो, इस बात को अच्छी तरह जान लो कि जीवनरूपी समुद्र में सुख के टापू लहलहा रहे हैं और तुम्हारे आदर्श का प्रकाशमान तट तुम्हारे आने की बाट देख रहा है, तुम अपने मन रूपी नौका की पतवार को दृढ़ता से पकड़े रक्खो, अर्थात् अपने मन को चञ्चल और चलायमान न होने दो; और आपके भीतर जो परमानन्द का निकेत है उसका अनुभव करो।

२१४. मन और इन्द्रियों को वश में करने वाले विजयी मनुष्य को दूसरों की कृति में कुछ भी दुःख नहीं होता, जिस प्रकार सूर्य पर धूल फेंकने से कोई सूर्य को गदला-मैला नहीं कर सकता इसी प्रकार विजयी मनुष्य को कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

२१५. हे सौम्य! प्रिय अमर आत्मा! वीर

बनिये, सदा प्रसन्न रहिये। इस शरीर रूपी पिंजरे से बाहर निकल आइये। आप यह नश्वर शरीर नहीं हैं, आप अमर आत्मा हैं, आप सम्राटों के सम्राट हैं—ऐसा अनुभव कीजिये। इसी जन्म में अपने जन्म अधिकार को प्राप्त कीजिये, निश्चय कीजिये, साक्षात्कार कीजिये। हे जिज्ञासु! साहस आपका जन्म अधिकार है, भय नहीं, शान्ति आपका जन्म अधिकार है अशान्ति नहीं, अमरत्व आपका जन्म अधिकार है मृत्यु नहीं, आनन्द आपका जन्म अधिकार है शोक नहीं। ज्ञान आपका जन्म अधि- है अज्ञान नहीं।

२१६. इन्द्रियों के गुलाम न बनिये, अपनी स्व-तन्त्रता को न खो दीजिये, आप अमर आत्मा हैं अपने भीतर से शक्ति साहस का बल प्राप्त कीजिये, आपके भीतर शक्ति तथा ज्ञान का विशाल क्षेत्र है उसे प्रदीप्त करना है, आत्मज्ञान की ज्योति से अज्ञान का अन्धकार नष्ट कीजिये। ज्ञान के साम्राज्य में प्रवेश करने के लिये एक-मात्र आत्मा का सतत ध्यान ही कुञ्जी है। साधन करके उस अमृत का पान कर अमृतत्व प्राप्त कीजिये, यही जीवन का लक्ष्य है यही जीवन की सार्थकता है।

२१७. अनासक्तिमय जीवन बिताइये, मन को शनैः-शनैः अनुशासित कीजिये। कोई भी व्यक्ति दुःख रोग कठिनाई तथा बाधाओं से मुक्त नहीं है, आपको अपने

अन्दर परम आनन्द में ही निवास करना चाहिये, वही आपके जीवन का मूल तथा आधार है, आपको अपने दिव्य स्वरूप की याद बनाये रखना होगा, तभी आपको जीवन की कठिनाइयों का सामना करने के लिये आन्तरिक शक्ति प्राप्त होगी, तभी आप समत्व बुद्धि प्राप्त करेंगे। आप बाह्य बुरे प्रभावों तथा दुःखद मलिन स्पन्दनों से प्रभावित न होंगे।

२१८. प्रिय जिज्ञासु ! दुःख तथा शोक करने का स्थान ही कहां है, तू तो ईश्वर का प्रिय पुत्र है, उसकी रहस्यमयी लीला को समझ और आनन्द में विचर।

२१९. आपके हृदय मन्दिर में करुणासागर भगवान् निवास करता है, वह आपके अति निकट है, आप उसे भूल गये हैं परन्तु वह सदा आपकी देखरेख करता है, वह आपकी आवश्यकताओं की पूर्ति इस तरह ठीक-ठीक करता है जैसे आप स्वयं नहीं कर सकते, अहंकार के कारण अपने कन्धों पर जो बोझा आप लिये हुए हैं उसे उतार फेंकिये, पूर्ण आत्म-समर्पण कीजिये, उसकी ओर दौड़िये वह हाथ फैलाये हुये आपकी प्रतीक्षा कर रहा है, वह आपके लिये सब कुछ करेगा। शिशु के समान अपने हृदय को ईश्वर के प्रति खोलकर रखिये, सारे दुःख समाप्त हो जायेंगे। भावपूर्ण हृदय से कहिये मैं तेरा हूँ, हे मेरे प्रभु ! अब मैं तेरा ही होकर रहूँगा।

२२०. भूत की चिन्ता न कीजिये, भविष्य की योजना न बनाइये, मन को हवाई किले न बनाने दीजिये, केवल वर्तमान में निवास कीजिये ।

२२१. अपनी कामनाओं को पूर्ण करने के लिये प्रयत्न न कीजिये, आशा न कीजिये, किसी वस्तु की कामना न रखिये । अहमता तथा ममता का त्याग कीजिये, सहनशीलता तथा साहस का विकास कीजिये, स्वार्थ तथा बड़प्पन की भावना को नष्ट कीजिये, नम्र सुशील बनिये, नपे तुले शब्द बोलिये ।

२२२. बहुधा मनुष्य वस्तु को पीछे छोड़ छाया के पीछे दौड़ते हैं, आध्यात्मिक दृष्टि से यह सिद्धान्त ही बन्धन का मूल है । ईश्वर को न खोज मनुष्य उसकी छाया जगत् के पीछे दौड़ता है, यही सारे दुःखों का कारण है ।

२२३. केवल इच्छामात्र से ही कुछ नहीं होगा, पूरा वैराग्य, तीव्र मोक्ष इच्छा, सतत संलग्न तथा निदि-ध्यासन की आवश्यकता है ।

२२४. अपनी यात्रा में आपको बड़ी कठिनाइयां उठानी पड़ेंगी, परन्तु उनसे भयभीत न होइये, वीर बनिये, वीरतापूर्वक अग्रसर होते जाइये । अन्ततः आप नित्य सुख के केन्द्र में विश्राम करेंगे ।

२२५. इस मार्ग में बहुत सी बाधायें तथा कठि-

नाइयां हैं परन्तु यदि आपको अमृतत्व प्राप्त करना है तो साधना करनी पड़ेगी, यदि दृढ़ संकल्प है तो मार्ग भी दिखाई पड़ेगा। यदि आप में प्रबल मोक्ष की इच्छा है तो अन्दर से बल मिलेगा।

२२६. प्रार्थना का बहुत लाभ है, प्रार्थना करते समय असीम के साथ सम्बन्ध हो जाता है, प्रार्थना के लिये अधिक विद्वत्ता अथवा वक्तव्य कला की आवश्यकता नहीं है, ईश्वर तो मनुष्य से पवित्र हृदय की मांग करता है, निरक्षर शुद्ध हृदय के विनय पूर्ण टूटे फूटे अल्प शब्द भी ईश्वर के लिये पर्याप्त हैं।

२२७. अपने हृदय के अन्तरतम से प्रार्थना कीजिये हे प्रभु! मैं तेरा हूँ, तेरा ही होकर रहूँगा, मुझ पर करुणा कर, मैं तेरा बालक हूँ, क्षमा कर, पथ-प्रदर्शन कर, रक्षा कर, प्रकाश दे।

२२८. वेदान्त का वक्ता बनना आसान है, यदि आप कुछ वर्षों तक पुस्तकालय में बैठकर शब्दकोष तथा मुहावरे के ज्ञान को बढ़ालें, तथा कुछ कहानियों को याद करलें तो आप सुन्दर भाषण दे सकेंगे, परन्तु किसी दुर्गुण को दूर करना उतना आसान नहीं है। चाय की आदत को भी दूर करना कितना कठिन है, यह आदत तो कुछ ही वर्षों से पड़ी हुई है, फिर मन में गहरी पड़ी हुईं बुरी वृत्तियों का उन्मूलन करना कितना कठिन

होगा ।

२२९. निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर जीवन बिताइये, निरुद्देश्य न भटकिये, निश्चित लक्ष्य रखकर चलिये, स्थिरता पूर्वक ज्ञान गिरि के ऊपर चढ़िये तथा अमृतत्व के मधुर धाम की चोटी ब्रह्म को प्राप्त कीजिये। आध्यात्मिक मार्ग में बारम्बार विफलताएँ होती हैं सतत प्रयास, अनवरत सावधानी तथा अडिग संलग्नता की आवश्यकता है ।

२३०. वीरतापूर्वक मन के साथ संग्राम कीजिये, आगे बढ़ते जाइये । हे आध्यात्मिक वीर ! अविचल हृदय से युद्ध करते जाइये, संग्राम कीजिये, साहसी बनिये, अपने संग्राम के अन्त में आप नित्य सुख के असीम साम्राज्य को प्राप्त करेंगे। निराश न होइये, शांत रहिये, सत्य से प्रेम कीजिये, आप शीघ्र ही परम शांति एवम् सुख को प्राप्त करेंगे ।

२३१. समय बहुत ही मूल्यवान है, मनुष्य समय के मूल्य को नहीं समझता। मरणासन्न रोगी के निकट स्थित डाक्टर से आप कहेंगे डाक्टर साहब ! इस रोगी के लिये कुछ तो कीजिये, कोई शक्तिशाली इंजेक्शन ही दे दीजिये, कम से कम कुछ घन्टों तक तो श्वांस चलता रहे, मेरा भाई बम्बई से रोगी को देखने के लिये आरहा है। डाक्टर केवल यही उत्तर देता है, मेरे प्रिय मित्र !

मैं कुछ नहीं कर सकता, यह मामला अब काबू से बाहर है, यह रोगी अब पांच मिनट के अन्दर ही मर जायगा। अब समय के मूल्य को पहचानेंगे, आप पछतायेंगे कि कितने दिन, महीने तथा वर्ष आपने व्यर्थ खो दिये।

२३२. मनुष्य कपड़े पहनने, बूट साफ करने, हजामत आदि बनाने में घन्टों का अपव्यय कर देता है परन्तु यदि कोई भक्त मनुष्य को सत्संग में बुलाने के लिये आ जाए, तब उत्तर देता है, भाई जी मेरे पास तो समय ही नहीं है, मुझे अमुक-अमुक काम करने हैं इस प्रकार बहाने करता है, सिनेमा तथा ड्रामा के लिये जागरण करते हैं, पैसा खर्च करते हैं परन्तु हवन करने को कहा जाय तो उत्तर मिलता है खर्च और समय कहां से लावें।

२३३. प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर का दर्शन करना चाहता है परन्तु कोई भी साधना करना नहीं चाहता।

२३४. मोह तथा राग ही अमृतत्व का भयानक शत्रु है, राग से मुक्त होना बड़ा कठिन है, भ्रमर काष्ट में भी छेद कर सकता है परन्तु मधु की आसक्ति के कारण नष्ट हो जाता है, यही दशा मनुष्य की है। वह बड़े-बड़े आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है परन्तु संसार के विविध पदार्थों में आसक्त होकर नष्ट हो जाता है।

२३५. सर्प के मुख में मेंढक है, मेंढक का मुख ही बाहर है, यह कुछ ही मिनटों में मृत्यु का शिकार बन

जायेगा, फिर भी इस स्थिति में वह अपनी जीभ को बाहर फेंककर एक या दो मच्छरों को खाने का लोभ करता है।

हे मूर्ख मनुष्य ! उसी प्रकार आप तो पहले ही काल के मुख में पड़े हुए हैं, आप कुछ पता नहीं किस क्षण काल के ग्रास में चले जायेंगे, फिर भी आप में तृष्णा है, सदा विषय सुखों में ही आसक्त रहते हैं, यह कितने आश्चर्य की बात है। मृत्यु आपको निगल जाने के लिये प्रतीक्षा कर रही है, वैराग्य विवेक के द्वारा आसक्ति का भेदन कीजिये, ईश्वर के नाम में श्रद्धा रखिये, जप तथा ध्यान कीजिये और परमानन्द प्राप्त कीजिये। समय रहते ही साधना कीजिये, जब शरीर जरजरी भूत हो जायगा, तब साधना नहीं हो सकेगी।

२३६. विषय सुखों की प्राप्ति के लिए मनुष्यों के प्रयत्नों का कोई अन्त नहीं, फिर भी इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती, शरीर, इन्द्रिय तथा मन पर अधिकार स्थापित कीजिये, हृदय के भीतर गहरा गोता लगाइये।

२३७. जब बिजली की बत्ती वस्त्र के कई आच्छादों से आच्छादित रहती है तब उसमें उजला प्रकाश नहीं होता, किन्तु जब एक-एक कर वस्त्र हटा दिये जाते हैं तो प्रकाश अधिकाधिक उज्वल होता जाता है, इसी भांति जब यह आत्मा जोकि पञ्च कोशों में आच्छादित

है ध्यान के द्वारा निरावृत्त होता है तब वह प्रकट होता है।

२३८. पहले अपने हृदय को शुद्ध बनाना चाहिए, पुनः स्थिरता पूर्वक साहस के साथ ध्यान कीजिये, उत्साह पूर्वक आगे बढ़ते जाइये।

२३९. यदि ईश्वर साक्षात्कार के लिये उसी उत्कंठा से साधना करेंगे, जिस तरह आप अपने स्त्री बच्चों तथा सम्पत्ति के लिये प्रयत्न करते हैं तो आपको शीघ्र ईश्वर का साक्षात्कार होगा।

२४०. वातावरण बुरा नहीं है परन्तु आपका मन ही बुरा है, आपने मन को पूर्णतया अनुशासित नहीं किया है, इस मन के साथ संग्राम कीजिये। अपने मन को पहले शिक्षित कीजिये। प्रतिकूल वातावरण में भी आप विचार से काम लेंगे, अपना साधन करते रहेंगे तो आपकी इच्छा-शक्ति बढ़ेगी, तथा आप शक्तिशाली बन जायेंगे। प्रत्येक वस्तु में अच्छाई को देखिये, बुराई को अच्छाई में ही परिणत कर डालिये, यही वास्तविक योग है।

२४१. मुक्ति की प्राप्ति के लिये प्रत्येक व्यक्ति को किसी न किसी प्रकार की साधना अवश्य करनी चाहिये, साधना ही वास्तविक धन है।

२४२. दूध में मक्खन है परन्तु उसे मथने के

अनन्तर ही प्राप्त कर सकते हैं उसी तरह निरन्तर साधना के द्वारा ही ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव है। यदि आप संलग्नता तथा श्रद्धा पूर्वक साधना करेंगे और दृढ़ व्रती होंगे तभी आपको सफलता प्राप्त होगी।

२४३. संकल्पों तथा मलिनताओं को दूर करना परम आवश्यक है।

२४४. जिस साधक ने शम तथा दम के अभ्यास द्वारा मन को अन्तर्मुखी कर लिया है, तथा जिसमें प्रबल मोक्ष की इच्छा है वह सतत ध्यान के द्वारा अपने भीतर ही परमात्मा का दर्शन कर लेता है।

२४५. मनुष्य को सदा सावधान और सतर्क रहना चाहिये, अन्यथा संसार सर्प मनुष्य के अनजाने ही उस पर वार कर देगा। विवेक तथा विचार के दो नेत्र सदा खोलने चाहियें। सत्संग तथा एकान्त, ये दो जादू की बूटी हैं जिनसे संसार का सारा विष उतर जाता है उनकी सहायता से स्वस्थ बनिये भय मत कीजिये।

२४६. तृष्णा का पेट कभी नहीं भरता, कामनाएँ मृत्यु होने तक पीछा नहीं छोड़तीं। जो कामनाओं के लिये जीते हैं उनके जीवनघट रीते हो जाते हैं, ऐसे मनुष्य जीवनपर्यन्त कामनाओं के दास रहते हैं वे अपने स्वामी नहीं बनते, अतः जग के स्वामी से नहीं मिल पाते।

२४७. जगत में प्रमाद उत्पन्न करने वाली मोह रूपी मदिरा को पीकर प्राणी पागल हो जाता है। मोह, अज्ञान, अविवेक और अविद्या चारों का एक गुर है, ये जिसे पकड़ लेते हैं वह छूट नहीं पाता, वह ऐसे कर्म करता है जिनसे दुःखों की वृद्धि होती है। ये जिस पर पड़ते हैं उसकी बुद्धि को चाट जाते हैं, उसे अच्छे बुरे का ज्ञान नहीं रहता। किसी की अच्छी बात न सुनता है न मानता है इसलिये सदा दुःखी रहता है।

२४८. जो शास्त्र के उपदेश को न सुनते हैं न मानते हैं उन्हें सदैव भटकना पड़ता है, ऐसे मनुष्य रोते भींकते घिसट-घिसट कर जीवन पूरा करते हैं।

२४९. अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिये, आनन्दरूपी निधि का ताला खोलने के लिये दो कुञ्जी परमेश्वर ने प्रत्येक मनुष्य के लिये सुलभ कर दीं, सत्संग और स्वाध्याय। समय पर एक न मिले तो दूसरे से काम लिया जा सकता है। शास्त्र और सत्संग प्रकाशपुञ्ज के समान है, जो संसार सागर में चलते हुए जीवन-पोतों को दुखों की चट्टानों से टकरा कर डूबने से बचाता है।

२५०. सब प्रकार की चिन्ताओं, निर्बलताओं और अशान्ति को दूर करने वाला एकमात्र साधन है सत्संग।

२५१. मन को ऐसा बनाना चाहिये कि वह किसी भी अवस्था में दुःखी अप्रसन्न न रहे। उदास, व्याकुल,

भयभीत और निराश रहने से जीवन खण्डित तथा निस्तेज हो जाता है। मुस्कराते हुए दुःखों को दूर खदेड़ने से सर्वत्र विजय मिलती है, दृढ़तापूर्वक कष्टों को सहन करने से और उन्हें देखकर मुस्करा देने से वे उलटे पाँव भाग जाते हैं, दृढ़ता और प्रसन्नता में सब संकटों को चूर-चूर कर देने की अमोघ शक्ति है।

२५२. श्रद्धा और विश्वासपूर्वक परमेश्वर के स्मरण, चिन्तन, ध्यान से पापी पवित्र होते हैं, दुःखी के दुःख दूर होते हैं, जिज्ञासु की जिज्ञासा पूर्ण होती है और ज्ञानी का ज्ञान सार्थक हो जाता है।

२५३. साधन की कठिनाइयों से घबरा जाने वाला अथवा उलझनों में फंस जाने वाला जीवित ही मृतक के समान है, सिसक-सिसक कर जीवित रहने में जीवन की क्या सार्थकता है ?

२५४. कठिनाइयों, बाधाओं और उलझनों का अन्त करना और उनके उस पार रहने वाले आनन्दमय परमेश्वर को प्राप्त करना मनुष्य का परमधर्म है, इसकी प्राप्ति धैर्यपूर्वक साधना से होगी।

२५५. आन्तरिक पवित्रता के बिना प्रभु का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जो परमेश्वर को पाना चाहते हैं उन्हें अपने आपको अधिक से अधिक पवित्र करना आवश्यक है, किसी भी दिन पवित्र हृदय में

परमेश्वर मिल सकता है।

२५६. विरोधी शक्तियों से भयभीत होना और सदा सन्देह तथा दुविधा में पड़े रहना, ऐसी भयङ्कर निर्वलता है जो जीवन को पनपने नहीं देती।

२५७. प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन का निर्माता कलाकार है, वर्तमान को सुन्दर बनाकर वह भविष्य को भी उज्ज्वल कर सकता है।

२५८. जो जिज्ञासु धैर्य और उत्साह से साधन करता है और सफलता में अटल विश्वास रखता है और परिस्थितियों से विचलित नहीं होता, वह अवश्य सफलता प्राप्त करता है।

२५६. आलसी मनुष्य का स्वभाव है कि कर्म न करना अथवा कम करना और अधिक चाहना यही दुःखों का कारण है।

२६०. मन वचन और कर्म की पवित्रता का नाम शौच है, तन रूपी दैवी वंशी में परमेश्वर का मधुर संगीत तभी गूँजता है जब उसका कोई छिद्र रुका हुआ अथवा अपवित्र न हो। प्राणों का मोह त्याग कर साधन में प्रवृत्त होना और विजयी हुए बिना पैर पीछे न रखना, जिज्ञासु का कर्त्तव्य है।

२६१. जीव और ब्रह्म की चर्चा—वाद-विवाद तो खूब किया जावे और व्यवहारिक जीवन छल कपट से

भरा रहे तो जीवन में शाँति और सुख का अनुभव कभी नहीं होता।

२६२. जगत् में दूसरे व्यक्ति बात न मानें अथवा अवज्ञा या अवहेलना करें तो इतना दुःख नहीं होता, जितना उस समय होता है जब अपनी स्त्री या पुत्र मन के अनुकूल काम नहीं करते, यही ममता की मार है। सब की ममता कच्चे धागे के समान है, उसे इकट्ठी करके प्रेम की पक्की डोरी बाँटकर जो प्रभु के चरणों के साथ अपने को बांध लेते हैं उनसे परमेश्वर अलग नहीं होता।

२६३. पर्वत जैसी ऊँची, चट्टानों जैसी कठोर और दुर्गों जैसी दुर्जय बाधाएँ मनुष्य का मार्ग रोकती हैं इस गढ़ को जीतना दुर्लभ है इन बाधाओं को जीतने अथवा पार करजाने का एकमात्र उपाय है परमेश्वर की भक्ति।

२६४. अहंकार विनाश का मूल है जो अहंकार के कारण परमेश्वर की ओर नहीं चलता, वह अमृत छोड़कर विष लेता है उसका विनाश निश्चित है।

२६५. मनुष्य प्रायः अपनी कहता है और अपने मन की कराना चाहता है परन्तु होता वही है जो ईश्वर का विधान है। यदि मनुष्य अपनी इच्छा को ईश्वर की इच्छा में मिलादे, तो सदा सुखी रहे।

२६६. परमेश्वर सबके हृदय में बैठा है, इसका जिसे ज्ञान हो जाता है वह उसकी पूजा के लिये अपने हृदय-

रूपी मन्दिर को पवित्र करता है, मन में परमेश्वर का सिंहासन जमाता है, ज्ञान और आनन्द प्राप्त करता है।

२६७. भक्ति रूपी कामधेनु से मनुष्य के हित की अनन्त निर्मल दुग्ध धाराएँ प्रवाहित होती हैं, परम आनन्द रूपी रत्न की पिटारी पर अज्ञान का ताला लगा हुआ है भक्ति उस ताले को खोलने की कुञ्जी है।

२६८. मनुष्य के अन्तःकरण में दैवी प्रसुप्त चेतना है, उसे जाग्रत करने का साधन भक्ति है।

२६९. मनुष्य के लिये जैसे अन्न जल वायु की आवश्यकता है, वैसे ही धर्म की है। विकारों पर अधिकार पाने के लिये, सत्य नीति न्याय की स्थापना के लिये एकमात्र साधन धर्म है।

२७०. परमेश्वर की शरण लेना सर्वोत्तम धर्म है।

२७१. सत्संग की सार्थकता श्रद्धा और अदोष दृष्टि पर निर्भर है जो ध्यान देकर श्रद्धा से सुनता है, रुचि प्रेम और विश्वास रखता है, संशय प्रमाद और तर्क को छोड़ देता है और व्यर्थ दोष ढूँढने का प्रयत्न नहीं करता, और जिज्ञासा भाव से कुछ करने के लिये सुनता है, वही वास्तव में सुनने का यथार्थ लाभ उठाता है, उसका जीवन उन्नत होता है।

२७२. अपने स्वरूप से तुम्हारे अधिक समीपवर्ती और कोई वस्तु नहीं है, सो जब तुम अपने स्वरूप को

ही नहीं जानते, तो अन्य किसी पदार्थ को जानने का अभिमान कैसे कर सकते हो।

२७३. जब तक यह जीव अपने को नहीं जानता, तब तक पराधीन और दुःखी ही रहता है।

२७४. मनुष्य की विशेषता तो आत्मा का अनुभव करने में ही है। यदि इसके शरीर की ओर देखें तब तो इसमें कुछ भी विशेषता नहीं है, यदि इसके मस्तक की एक नाड़ी में कोई दोष आ जाय तो यह पागल हो जाता है।

२७५. यदि इसके धैर्य की ओर देखा जाय तो यह अत्यन्त पिछड़ा हुआ है, कभी-कभी तो एक पैसा गिरने से ही यह दुःखी और उदास हो जाता है, एक समय भोजन न मिले तो व्याकुल हो जाता है, अतः शरीर दृष्टि से तो यह मनुष्य बहुत ही गिरा हुआ है।

२७६. यदि शरीर की सुन्दरता पर विचार करें तो यह अत्यन्त मलिन जान पड़ता है। इसमें है क्या? मानो मल-मूत्र के भवन पर त्वचा लपेटी हुई हो।

२७७. एक बार एक महात्मा मार्ग में चल रहे थे, आगे कुछ मेहतर गढ़े में विष्ठा डाल रहे थे, उसके पास होकर निकलने वाले दुर्गन्ध के कारण नाक मूंद लेते थे। उनसे महात्मा ने कहा भाई! क्या तुम भी सुनते हो, यह विष्ठा कहती है कि कल मैं बाजार में रखी हुई थी सब लोग मेरी ओर प्रेम से दृष्टि लगाये हुए थे, यह

लोग मुझे खरीद लाये थे। अब एक रात तुम्हारी संगति करने से मेरी यह दुर्दशा होगई। सो विचार तो करो कि मुझे तुम्हारे पास से भागना चाहिये, या तुम्हें मेरे पास से।

२७८. जब जिज्ञासुओं को कोई रोग होता है तो प्रभु उन्हें कष्ट नहीं देते, बल्कि उस दुःख के द्वारा वे अपने प्रिय जनों को अपनी ओर खींचते हैं, अतः यह दुःख भी जीवों को प्रभु की ओर खींच ले जाने वाली रस्सी ही है।

२७९. इस मनुष्य का भजन में प्रेम तभी होता है, जब शुभ कर्मों में वर्ते, और इसे शुभ कर्मों का अवकाश तब मिलता है जब यह सम्पूर्ण भोग वासनाओं को त्यागे।

२८०. यह जीव शरीरधारी है अतः यह सभी प्रकार के भोगों से शून्य तो नहीं रह सकता, इसे शरीर निर्वाह के लिये भोजन और वस्त्रों की अपेक्षा तो रहेगी ही इसलिये यह विचार पूर्वक शरीर निर्वाह के लिये तो ग्रहण करे और भोगवासना का त्याग करे।

२८१. कुछ लोग कहा करते हैं कि भला भगवान् को हमारे भजन की क्या आवश्यकता है और पापाचरण से भी उन्हें क्या दुःख होता है क्योंकि भगवान् समदर्शी हैं। ये मूर्ख इस बात पर ध्यान नहीं देते कि

जिज्ञासु जन जो शुभ कर्म और भजन करते हैं वह उनके मन की पवित्रता के लिये ही होता है। यह भाग्यहीन पुरुष तो यही समझते हैं कि भजन और शुभ कर्म भगवान् के लिये ही किये जाते हैं अपने कल्याण के लिये नहीं।

२८२. जैसे कोई रोगी कुपथ्य का त्याग न करे और दवाई का सेवन भी न करे, और कहे कि इससे वैद्य की क्या हानि है ? ठीक है इससे वैद्य की तो कोई हानि नहीं है किन्तु रोगी का तो नाश हो ही जाता है। रोगी का नाश वैद्य की अप्रसन्नता से नहीं अपितु कुपथ्य से ही होता है।

२८३. धर्मात्मा पुरुष तो वे ही हैं जो इस मन को छल रूप जानते हैं। जिस पुरुष ने मन और वासनाओं, इच्छाओं को अपने अधीन नहीं किया वह तो महा नीच है, कोरा पशु ही है।

२८४. जो पुरुष अपने सयानपन और चतुराई से निर्दोष वनना चाहता है वह तो मन का दास है और झूठा अभिमान करने वाला है।

२८५. अपने मन का निरीक्षण कभी नहीं छोड़ना चाहिये। जब मनुष्य मन की ओर से निःशंक हो जाता है तो अवश्य छला जाता है और फिर उसे अपने सर्वनाश का भी पता नहीं चलता।

२८६. यह संसार एक पड़ाव है, जो जिज्ञासु प्रभु की ओर चलते हैं उनके लिये यह मार्ग में आया हुआ ऐसा स्थान है जैसे किसी विशाल वन के किनारे कोई नगर या बाजार हो। जिस प्रकार मार्ग में चलने वाले परदेशी बाजार से तोषा एकत्र कर लेते हैं उसी प्रकार संसार भी परलोक के लिये तोषा इकट्ठा करने की जगह है।

२८७. इस संसार में जीव को दो कार्य अवश्य करने हैं। पहला तो यह कि अपने हृदय को अशुभ स्वभावों से बचावे, क्योंकि उनसे बुद्धि नष्ट हो जाती है। और दूसरा हृदय का आहार प्राप्त करे और शरीर को भी नष्ट होने से बचावे और उसे भी इसका आहार दे। इनमें हृदय का आहार है भगवान का प्रेम, उसका भजन। क्योंकि सबका आहार अपने स्वभाव के अनुसार होता है और वही उसे अत्यन्त प्रिय भी होता है।

२८८. जब यह जीव भगवान् से भिन्न किसी अन्य वस्तु के साथ प्रीति करता है तब उसी से इसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

२८९. शरीर और जीव का सम्बन्ध ऐसा है जैसे तीर्थ यात्रा में यात्री और ऊँट का सम्बन्ध होता है। वहाँ ऊँट ही यात्री के लिये होता है ऊँट के लिये यात्री नहीं होता। यद्यपि यात्री घास-पानी देकर ऊँट की रक्षा

अवश्य करता है तथापि उसका प्रयोजन यात्रा मात्र ही है ऊँट नहीं। इसी से तीर्थ यात्रा समाप्त हो जाने पर फिर उसे ऊँट की अपेक्षा नहीं रहती। यात्री को उचित है कि मार्ग में भी आवश्यकतानुसार ही ऊँट की खबर लें। यदि सारा दिन उसी की टहल और सम्भाल में लगा रहेगा तो अपने लक्ष्य तीर्थ स्थान पर नहीं पहुँच सकेगा। इसी प्रकार यदि यह मनुष्य सारी आयु निरन्तर शरीर की ही रक्षा में लगा रहे तो कभी अपना कल्याण नहीं कर सकेगा और अपने वास्तविक लक्ष्य भगवान् को भी प्राप्त नहीं कर सकेगा।

२९०. इस संसार में शरीर की रक्षा के लिये तीन पदार्थों की आवश्यकता होती है भोजन, वस्त्र और निवास स्थान। और हृदय का आहार है भगवान् की पहचान और वह जितना अधिक हो उतना ही आनन्द भी अधिक होता है।

२९१. मनुष्य का मन प्रधानतया आहार, वस्त्र और स्थान में ही आसक्त रहता है और इस भोग अभिलाषा के जाल में फंसकर वह अपने आपको भूला रहता है। यहाँ तक कि उसे इस बात का भी ज्ञान नहीं रहता कि वास्तव में इन आहार आदि का प्रयोजन क्या है और इस जगत् में मैं किस निमित्त से आया हूँ, इस कारण से ही वह हृदय के आहार की ओर से अचेत रहता है और

अपने कल्याण की बात भूल जाता है।

२६२. सांसारिक पदार्थों की प्रीति से हृदय में ऐसे बुरे भाव पैदा हो जाते हैं, जो बुद्धि के नाश के ही कारण होते हैं जैसे तृष्णा, कृपणता, ईर्ष्या और वैर आदि।

२६३. लोगों ने इस बात पर विचार नहीं किया कि आहार, वस्त्र और स्थान, इनका प्रयोजन केवल प्राणों की रक्षा के लिये ही है। इसी में लगे रहकर अपने वास्तविक कार्य को भुला दिया है।

२६४. जैसे कोई यात्री तीर्थ के मार्ग और अपने साथियों को तो भुला दे और अपने समय को घोड़े की सम्भाल और सेवा में ही नष्ट करता रहे, ऐसा यात्री कभी अपने लक्ष्य पर नहीं पहुँच सकता।

२६५. इसी प्रकार जो यात्री परलोक पर अपनी दृष्टि नहीं रखता और अपने को परदेशी नहीं समझता तथा माया के जंजालों में आवश्यकता से अधिक फंसा रहता है वह कभी भगवान् को नहीं प्राप्त कर सकता।

२६६. जो पुरुष परलोक के कष्टों से मुक्त होना चाहे उसे किसी भी स्थूल पदार्थ में आसक्त नहीं होना चाहिये। हाँ कार्य निर्वाह के लिये तो सांसारिक पदार्थों का उपयोग करना उचित ही है।

२६७. जैसे इस मनुष्य को मल-मूत्र त्यागने की

अपेक्षा होती है तो उसके अनुरूप स्थानों में जा बैठता है, उसी प्रकार भूख प्यास लगने पर अन्न जल ग्रहण करना भी आवश्यक है ही, किन्तु यह आहार ग्रहण केवल शरीर यात्रा का निर्वाह करने के लिये ही होना चाहिये। मन में ऐसा समझे कि जैसे मल त्याग किये बिना शरीर को कष्ट होता है वैसे ही आहार के बिना भी इसका काम नहीं चल सकता।

२६८. जो मनुष्य इस संसार में आकर अपने कल्याण का साधन नहीं करते, बल्कि अन्य-अन्य कार्यों में लगे रहते हैं वे निःसन्देह अत्यन्त मूर्ख हैं और अन्त को बहुत पछतावेंगे।

२६६. प्रभु की पहचान का रहस्य, और पहचान का वास्तविक स्वरूप केवल पण्डित या वक्ता होने से तथा संसारी पुरुषों की दृष्टि में अनुभवी कहाने से सर्वथा भिन्न है उसका अनुभव तो साधना द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

३००. भजन से अचेत पुरुषों की अपेक्षा भजनानन्दी पुरुष उतने ही श्रेष्ठ हैं जितने मृतकों की अपेक्षा जीवित पुरुष अथवा जैसे सूखे वृक्षों की अपेक्षा फल से लदे हुए वृक्ष।

३०१. यद्यपि मन अत्यन्त कुटिल है किन्तु जब यह किसी कार्य में अपनी निस्सन्देह भलाई देखता है

तो उसमें प्रीति सहित सावधान भी हो जाता है, फिर तो वह कार्य चाहे कितना ही कठिन हो उसे कष्ट सहकर भी पूरा करना चाहता है। इसलिये तुम्हें उचित है कि मन को भली प्रकार समझाओ और कभी इसके सिर से अपना अंकुश दूर न करो।

३०२. यदि तुझे परलोक के सुख-दुःखों पर विश्वास न भी हो, तो भी तू इतना तो जानता ही है कि एक दिन मरना अवश्य है और उस समय यह सारे भोग यहीं छूट जायेंगे और तू उनके वियोग से सन्तप्त होता रहेगा। अतः तू जितना ही स्थूल पदार्थों में प्रीति बढ़ायेगा, उतना ही तुझे अधिक दुःख होगा। ऐसा जानकर तू सचेत हो और अपने कल्याण का साधन कर।

३०३. सन्तोष में ही सुख है। यदि सुखी होना चाहते हो तो अपनी स्त्री, अपने भोजन तथा अपने धन में ही सन्तोष करो और विद्या की प्राप्ति, प्रभु जाप तथा सात्विक दान में कभी भी सन्तोष न करो।

३०४. सुखी से मित्रता, दुःखी पर दया, पुण्यात्मा को देखकर हर्ष तथा पापियों के प्रति उपेक्षा की भावना के अनुष्ठान से मन प्रसन्न और निर्मल होता है।

* भजन *

## (१) अब चेत मना

अब चेत मना दिन बीत गयो,
फिर रैन अँधेरी आवत है।
जब जागत में कछु नाहीं कियो,
तब सपने की आस लगावत है॥
मत विषयों (झूठे जग) से तू नेह लगा,
इन में फँस कर है कौन बचा।
यह फूल हैं कागज के मूरख,
बिन खुशबू रंग लुभावत है॥
कहीं मौज, कहीं दुःख होता है,
तू किसकी याद में रोता है।
यह तो दुनिया के धन्धे हैं,
कोई आवत है कोई जावत है॥
अब प्रभुसे नेह लगाले तू, और ज्ञान की ज्योति जगाले तू।
व्यौपार यही सच्चा है 'रत्न', इक इकके दस-दस पावत है॥

## (२) मिलता है सच्चा सुख

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में।
है विनती यही पल २ छिन २ रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में॥
संकट ने मुझको घेरा हो, चाहे चारों ओर अन्धेरा हो,
यह चित्त न डगमग मेरा हो। रहे ध्यान···॥

चाहे वैरी सब संसार बने, मेरा जीवन मुझ पर भार बने,
चाहे मौत गले का हार बने । रहे ध्यान···॥
कांटों पै मुझको चलना हो, चाहे अग्नि में भी जलना हो,
चाहे छोड़ के देश निकलना हो । रहे ध्यान···॥
जिभ्या पर तेरा नाम रहे, यही काम मेरा सुबह शाम रहे,
बस ध्यान तेरा भगवान् रहे । रहे ध्यान०···॥

## (३) प्रभु मेरे जीवन का

प्रभु मेरे जीवन का उद्धार करदो,
भँवर में है नय्या, इसे पार करदो ।
मेरी इन्द्रियां हों सदा मेरे बस में,
मेरे मन पे मेरा यह अधिकार करदो ।
न शुभ कर्म करने में पीछे हटूं मैं,
कुकर्मों से मुझको खबरदार करदो ।
मेरा सर झुके तो झुके तेरे दर पर,
मुझे ऐसा दुनिया में सरदार करदो ।
मेरी हर घड़ी तेरे सिमरन में बीते,
यह विनती मेरी नाथ स्वीकार करदो ।
मैं गाऊँ सदा वेद ही की ऋचायें,
कि तन मन में वेदों का संचार करदो ।
मैं समझूं न जग में किसी को बेगाना,
मेरा विश्व भर के लिये प्यार करदो ।

पथिक देखलूं गर कोई दीन दुखिया,
मदद के लिये मुझको तय्यार करदो .

(सत्यपाल पथिक, अमृतसर)

—※—

## (४) कैसे वह लोग थे

कैसे वह लोग थे परमेश्वर का जिनको प्यार मिला,
जब हमने आह्वान किया केवल इन्कार मिला।
पा न सकेंगे मंजिल अपनी जीवन खो देंगे,
देख के डूबती नय्या को फिर अन्त में रो देंगे।
उसको ही मानव कहते जिसे प्रभु का प्यार मिला,
कैसे वह लोग थे···

तन के उजले मन के मैले तीनों ताप सहें,
निष्फल कर्म करें सारे यूं खाली हाथ रहें।
गंगा जल सम निर्मल मन को जीवन सार मिला,
कैसे वह लोग थे···

जब खुल गई गांठ हृदय की सारे बन्धन टूट गये,
पाकर के दीदार प्रभु का संशय सब छूट गये।
जगपति के [illegible] से मन वीणा का तार मिला,
कैसे वह लोग थे···

(पं० खुशीराम महोपदेशक आर्य प्रादेशिक सभा)

मुद्रक :—प्रताप प्रिंटिंग प्रेस, लाहौरी गेट, दिल्ली-६

## (५) तू सुमरन करले

तू सुमरन करले मेरे मना, तेरी बीती उमर हरि नाम बिना ॥

पंछी पंख बिन, हस्ती दन्त बिन, नारी पुरुष बिना ।
वैश्या-पुत्र पिता बिन हीना, तैसे प्राणी हरि नाम बिना ॥

देह नैन बिन, रैन चन्द्र बिन, धरती मेघ बिना ।
जैसे पंडित वेद विहीना, तैसे प्राणी हरि नाम बिना ॥

कूप नीर बिन, धेनु क्षीर बिन, मन्दिर दीप बिना ।
जैसे तरवर फल बिन हीना, तैसे प्राणी हरि नाम बिना ॥

★

## (६) दुनिया यह कर्मक्षेत्र है

दुनिया यह कर्मक्षेत्र है, कोई सैरगाह[1] नहीं ।
जब तक है स्वांस तन में, प्रभु को भुला नहीं ॥

खुशकिस्मती[2] से है मिला चोला मनुष्य का ।
जीती हुई यह बाज़ी है इसको हरा नहीं ॥

चौसर बिछी है काम क्रोध लोभ मोह की ।
खेला अगर यह खेल, तो इससे बचा नहीं ॥

मत मस्त हो विषयों की मय[3] पीके रात दिन ।
ओ बेखबर दम का तेरे, कुछ भी पता नहीं ॥

★

---

१ सैर करने का स्थान, २ सौभाग्य, ३ शराब ।

## सम्पादक की अन्य पुस्तकें

१. सन्त-वचन संग्रह प्रथम पुष्प मूल्य ५० पैसे
२. संन्त-वचन-संग्रह द्वितीय पुष्प मूल्य ५० पैसे
३. सन्त-वचन-संग्रह तृतीय पुष्प मूल्य ५० पैसे
४. सन्त-वचन-संग्रह चतुर्थ पुष्प मूल्य ५० पैसे
५. सन्त-वचन-संग्रह पंचम पुष्प मूल्य ५० पैसे
६. शिक्षाप्रद कहानियाँ मूल्य ५० पैसे
७. प्रभु-प्रार्थना मूल्य ५० पैसे

मिलने का पता—

**वानप्रस्थ आश्रम पुस्तकालय**

ज्वालापुर, ज़ि० सहारनपुर